PRANJAL PUBLICATION
NEW DELHI

बूँद-बूँद समुंदर

(कहानी संग्रह)

डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा 'उरतृप्त'

बूँद-बूँद समुंदर

(कहानी संग्रह)

9 788119 620814

डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा 'उरतृप्त'

ISBN: 978-81-19620-81-4

Publishing Right: Pranjal Publication
First Edition: March 2020
Price: 325/-

Publisher: Pranjal Publication
Print & Bound in India

Published by: Pranjal Publication
Office: Dariya Ganj, Delhi - 110002
Email: pranjalpublication@gmail.com

Title: Boond-Boond Samundar (Story Collection)
Author: Dr. Suresh Kumar Mishra 'Uratript' **Cover & Text Design:** Pranjal & Creative Team

दो शब्द

साहित्य की दुनिया में कुछ नाम ऐसे होते हैं, जो अपनी लेखनी की धार और संवेदनशील अभिव्यक्ति से पाठकों के हृदय पर अमिट छाप छोड़ जाते हैं। डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा 'उरतृप्त' ऐसे ही विलक्षण साहित्यकारों में से एक हैं, जिनकी लेखनी में समाज का वास्तविक चित्रण, मानवीय भावनाओं की गहरी पकड़ और व्यंग्य की तीखी धार देखने को मिलती है। उनके लेखन में हास्य की मिठास भी है और कटाक्ष की गूंज भी, जो पाठक को सोचने पर मजबूर कर देती है।

डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा 'उरतृप्त' ने अपनी साहित्यिक यात्रा में व्यंग्य, बाल साहित्य, कविता और कथा लेखन के विभिन्न आयामों को छुआ है। वे केवल लेखक नहीं, बल्कि समाज के सजग चिंतक और भाषा-संस्कृति के अनन्य साधक भी हैं। उनका लेखन यथार्थ के धरातल पर खड़ा होता है, जो जीवन के छोटे-छोटे दृश्यों को इतनी कुशलता से उकेरता है कि पाठक उसमें स्वयं को ढूंढने लगता है। उनके व्यंग्य संग्रह जैसे *एक तिनका इक्यावन आँखें*, *म्यान एक तलवार अनेक*, *गपोड़ी अड्डा* और *सब रंग में मेरे रंग* समाज के उन पहलुओं को उजागर करते हैं, जिन्हें हम अक्सर नजरअंदाज कर देते हैं। उनकी कहानियाँ पाठकों को भीतर तक झकझोरने की ताकत रखती हैं।

ब ँद-ब ँद समं दर, *ध प-छाँव के रिश्ते*, *अनदेखे मोड़* और *यादों की पगडंडी* उनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं, जो जीवन की सूक्ष्म अनुभूतियों और संवेदनाओं को अभिव्यक्त करते हैं। इनमें संकलित कहानियाँ जीवन के अनदेखे मोड़ों, संघर्षों, सपनों और यथार्थ के ताने-बाने को इतनी बारीकी से प्रस्तुत करती हैं कि हर पाठक इनमें खुद को देख सकता है। डॉ. मिश्रा केलेखन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे जटिल विषयों को भी इतनी

सहजता से प्रस्तुत करते हैं कि वे पाठक के मन-मस्तिष्क में सीधे उतर जाते हैं। उनकी भाषा में प्रवाह है, कहानियों में कसावट है और पात्रों में वास्तविकता की झलक है।

डॉ. मिश्रा का लेखन केवल मनोरंजन तक सीमित नहीं है, बल्कि समाज को एक दर्पण दिखाने का कार्य भी करता है। उनके व्यंग्य जहाँ समाज की विसंगतियों पर करारा प्रहार करते हैं, वहीं उनकी कहानियाँ मानवीय संवेदनाओं को पूरी गहराई से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करती हैं। उनके शब्दों में एक ऐसी जादूगरी है, जो पाठकों को बाँध लेती है और उन्हें सोचने पर विवश कर देती है। यही कारण है कि वे साहित्य जगत में एक विशेष स्थान रखते हैं।

डॉ. मिश्रा को उनकी अद्भुत लेखनी के लिए अनेक प्रतिष्ठित पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। उन्हें तेलंगाना हिंदी अकादमी द्वारा *श्रेष्ठ नवयुवा रचनाकार सम्मान (2021)* से नवाजा गया, जो स्वयं इस बात का प्रमाण है कि उनका साहित्य युवा पीढ़ी को भी समान रूप से प्रभावित करता है। इसके अलावा, उन्हें *व्यंग्य यात्रा रवींद्रनाथ त्यागी सोपान सम्मान*, *साहित्य सृजन सम्मान* जैसे अनेक प्रतिष्ठित पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। विशेष रूप से, उन्हें *प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के करकमलों से सम्मान* प्राप्त हुआ, जो उनके साहित्यिक योगदान की राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृति को दर्शाता है।

बूँद-बूँद समुंदर केवल कहानियों का संकलन नहीं, बल्कि जीवन के विभिन्न रंगों का सुंदर कोलाज है। यह संग्रह पाठकों को एक नई दृष्टि प्रदान करता है, जिससे वे जीवन को और अधिक गहराई से समझ सकते हैं। इन कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे पाठकों को उनके ही जीवन के किसी न किसी हिस्से से जोड़ती हैं। कभी-कभी हम अपने आस-पास के साधारण घटनाक्रमों को अनदेखा कर देते हैं, लेकिन डॉ. मिश्रा की कहानियाँ उन्हीं साधारण क्षणों में छिपे असाधारण अर्थ को उजागर करने का कार्य करती हैं।

इस संग्रह की हर कहानी एक नया अनुभव, एक नई सोच और एक नई प्रेरणा देती है। यहाँ प्रेम है, पीड़ा है, हास्य है, व्यंग्य है, संघर्ष है, सपने हैं और सबसे बढ़कर, एक ऐसा यथार्थ है, जो हमें खुद से मिलाने का काम करता है। यह पुस्तक न केवल पठनीय है, बल्कि संग्रहणीय भी है। यह उन किताबों में से एक है, जिसे बार-बार पढ़ने का मन करता है और हर बार एक नई दृष्टि प्राप्त होती है।

डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा 'उरतृप्त' की लेखनी हमें यह सिखाती है कि साहित्य केवल शब्दों का संकलन नहीं, बल्कि जीवन के हर पहलू का दस्तावेज होता है। *बूँद-बूँद समुंदर* उनकी इसी साहित्यिक दृष्टि का प्रतीक है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह संग्रह पाठकों के हृदय में गहरी छाप छोड़ेगा और उन्हें जीवन की उन बारीकियों से परिचित कराएगा, जिन पर वे शायद ही कभी ध्यान देते हों।

साहित्य प्रेमियों के लिए यह संग्रह किसी अमूल्य धरोहर से कम नहीं। डॉ. मिश्रा के इस अनुपम कृति के लिए मैं उन्हें हार्दिक बधाई देती हूँ और इस पुस्तक की अपार सफलता की कामना करती हूँ।

- उषा किरण खान

(पद्म श्री और साहित्य अकादमी प्राप्त प्रसिद्ध साहित्यकार)

अनुक्रमणिका

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

1. गजब मुश्किल

अभिनव बड़ी मुश्किल से वर्ष में दो सर्टिफिकट भी प्राप्त करता तो उसे आश्चर्य होता। वह तो उसकी आत्मा ही जानती है कि उसके लिए भी उसे कितने पापड़ बेलने पड़ते हैं। न जाने कितनी व्यस्तताओं, दावतों, मौज-मस्तियों को दरकिनार करते हुए द्रौपदी के चीर हरण की भांति चलने वाले सेमिनारों में लंबे-चौड़े व्याख्यान सुनने पड़ते हैं। कइयों की तो कट, कॉपी-पेस्ट सामग्री कान से खून निकलवाने पर मजबूर करने वाली होती हैं। उसे तो आश्चर्य उस समय होता जब उसी का एक मित्र आए दिन देश भर में होने वाले सेमिनारों में आयोजकों से पहले पहुँचकर अपनी उपस्थिति दर्ज करा देता। मानो ऐसा लगता कि जैसे आयोजक कोई और नहीं वही हो। सेमिनारों के लगे बैनरों के सामने खड़े होकर फोटो खिंचवाना। जबरन अतिथियों के कंधों पर गिरकर उन्हें यह आभास दिलाना कि हम आपके सबसे बड़े प्रशंसक हैं। मंच पर बोलने का अवसर मिले न मिले किसी भी तरह जोड़-तोड़कर मंच पर चढ़कर व्याख्यान देते हुए फोटो खिंचवाना, फिर उसे लाइक, हिट, शेयर और कमेंट की लालसा में सोशल मीडिया के प्रिय सुपुत्रों व्हाट्सएप, फेसबुक आदि में साझा करना आदि आम बात है।

काश अभिनव को भी अर्जुन की भांति भविष्य बताने वाला श्रीकृष्ण मिल जाता तो कितना अच्छा होता। कोई उसे बता देता कि बेटा बेफिजूल में सर्टिफिकटों के पीछे दौड़ रहा है। आगे-आगे तालाबंदी का समय आनेवाला है, तब वेबिनारों की धूम होगी। जिन सर्टिफिकटों के लिए तुम इतने दिन से तरसते रहे, आगे चलकर वे ही तुम्हारे पीछे पड़ने लगेंगे।

हिंदी साहित्य में आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल, आधुनिक काल के बाद एक और काल जुड़ेगा, जिसका नाम होगा – वेबिनार काल। कभी-कभी लगता है आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक हिंदी साहित्य की जितनी सामग्री है उतनी सामग्री तो वेबिनार काल के दौरान वक्तागण यूँ लुटाते जा रहे हैं, जैसे यह सरकार का बजट हो। बजट केवल आंकड़ों में अच्छे लगते हैं। न इसे कोई देता है और न कोई इसे लेता है। पहले सेमिनारों में अपनी उपस्थिति से झूमने वाले आजकल सामाजिक दूरी बनाए रखने के लिए जूम में धूम मचा रहे हैं।

अब तो एक दिन में हजारों वेबिनार हो रहे हैं। यदि कोई एक महीना लगातार केवल अपने विषय के वेबिनार अटेंड कर ले तो उसके पास सर्टिफिकटों का इतना बड़ा थैला लद जाएगा कि उसे उठाने के लिए भाड़े का आटो मंगाना होगा। समय तो ऐसा आ गया है कि कोई छींक दे, खाँस दे, हँस दे, रो दे, या कुछ बोल दे तो फट से वेबिनार का आयोजन कर दिया जाता है। प्रशंसा तो प्रतिभागियों की करनी चाहिए। बकायदे डायरी में दिनांक, समय लिखकर फोन या कंप्यूटर के सामने बैठ जाते हैं। जैसे बैल चारा खाकर बड़ी देर से उगाली कर रहा हो। कभी-कभी तो प्रतिभागियों को उन्हीं के सर्टिफिकट देखकर माथा चकराने लगता है। उन्हें ही याद नहीं रहता कि किस वेबिनार के लिए कौन वक्ता आया था और न जाने क्या बोल गया था। वैसे वक्ताओं का भी धंधा बड़े जोरों पर हैं। जिनके पास साहित्य है उनके पास जूम का ज्ञान नहीं और जिनके पास जूम की धूम है उनके पास साहित्य का नाम नहीं। वक्ताओं और प्रतिभागियों के बीच एक अटूट रिश्ता बन जाता है। वक्ताओं को लगता है कि प्रतिभागी हमारी बातें बड़ी ध्यान से सुन रहा है और प्रतिभागी अपनी गंभीर मुद्रा से यह दर्शाते हैं कि उनसे बढ़कर दुनिया में कोई साहित्य पिपासु है ही नहीं।

दोनों एक-दूसरे को उल्लू बनाने में तुले हैं। अब भला सेमिनारों में आमने-सामने बैठकर जो ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ वह भला जूम में बैठकर खाक मिलेगा। हाँ यह अलग बात है गालिब, कि दिल को बहलाने का यह बहाना अच्छा है।

वैसे वेबिनार का आय़ोजन करना बच्चों का खेल नहीं है। इसके लिए भी काफी तैयारी करनी पड़ती है। प्रतिभागियों को पंजीकरण पत्रों के बहाने निशुल्क प्रमाण-पत्रों के लालच से अपनी ओर ललचाना पड़ता है। पता चला कि एक ही दिन दो-तीन जगह एक ही विषय पर वेबिनार चल रहे हैं तो प्रतिभागियों का दल छिटक सकता है। वक्ताओं की आडियो-वीडियो सेटिंग्स का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। थोड़ी सी चूक वक्ता को प्रतिभागियों की मुख्य धारा से काट सकता है। आयोजन समिति को सेतु की तरह काम करना पड़ता है। वेबिनार और शादी में कई समानताएँ हैं। जैसे शादी के दिन वर की नजर वधू पर, वर के माता-पिता की नजर उपहारों पर और विवाह में आए लोगों की नजर भोजन पर होती है। ठीक उसी तरह आयोजक की नजर वक्ता पर, वक्ता की नजर प्रतिभागियों पर और प्रतिभागियों की नजर सर्टिफिकटों पर होती है। सब मोह-माया का खेल है।

बेबिनार के समय प्रतिभागी भारत-पाक सीमा पर तैनात किसी सिपाही की तरह चौकस रहते हैं। आयोजक आडियो बंद कर देते हैं और प्रतिभागी अपना वीडियो। अपनी फोन की बैटरी, नेटवर्क, डाटा, वाई-फाई, बिजली आदि का पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं। वेबिनार के दौरान वे क्या कर रहे हैं, इसका पता लगाना उतना ही कठिन होता है जितना कि आसमान में तारे गिनना। कोई प्रतिभागी घर में भोजन कर रहा होता है तो कोई बच्चों से खेल रहा होता है। कोई टिक-टॉक देख रहा होता है, तो कोई कुछ। हाँ, साथी प्रतिभागियों में काफी एकजुटता देखने को मिलती है। यदि किसी से

कुछ छूट गया तो दूसरा उसे तुरंत बता देता है। वे फीडबैक फार्म की बेसब्री से राह देखते रहते हैं। एक बार फार्म भर दिया तो सर्टिफिकट अपनी झोली में। यदि कुछ ऊँच-नीच हो गयी तो वे आयोजकों को फोन कर नाना तरह के बहाने जैसे मेरा फोन बंद हो गया था, बिजली चली गयी थी डाटा खतम हो गया था आदि-आदि। आयोजक भी कोई झंझट नहीं पालना चाहते। इसलिए वे भी सर्टिफिकट देकर पल्ला झाड़ लेते हैं। चूँकि उन्हें भी पता है कि आगे चलकर सरकार तालाबंदी के समय कुकुरमुत्तों की तरह उपजे वेबिनार ई-सर्टिफिकटों को कचरे के डिब्बे में डालने वाली है।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

2. रंग का अभिशाप

गाँव के किनारे, पीपल के पुराने पेड़ के नीचे, एक टूटी-फूटी झोपड़ी में रहने वाला माधव जाने कब से समाज के ताने झेल रहा था। उसका अपराध बस इतना था कि उसकी त्वचा का रंग साँवला था। दूसरों की तुलना में कुछ अधिक काला। गाँव के बच्चे उसे 'काला भूत' कहकर चिढ़ाते, बड़े उसे हिकारत की नजर से देखते। वह चाहे जितनी भी मेहनत करता, लोग उसकी मेहनत को अनदेखा कर देते। लेकिन उसकी आँखों में एक सपना था—इज्जत से जीने का।

गाँव की चौपाल पर जब भी कोई चर्चा होती, माधव को वहाँ बैठने की अनुमति न होती। उसकी माँ, जमुना, कई बार गाँव के बड़े-बुजुर्गों के सामने गिड़गिड़ाई, पर लोग कहते, "अरे, इसका तो नसीब ही ऐसा है! भगवान ने काला बनाया है तो हमारी क्या गलती?" माधव यह सब सुनता और मन ही मन खुद को कोसता। उसे अपने काले होने पर शर्म आने लगी।

गाँव के साहूकार रामलाल का एक ही बेटा था—रमेश, जो माधव के ही उम्र का था। बचपन में दोनों साथ खेलते थे, लेकिन जैसे-जैसे उम्र बढ़ी, समाज ने उनके बीच दीवार खड़ी कर दी। रमेश ऊँची जाति और गोरे रंग का था, इसलिए उसकी हर बात सुनी जाती। वहीं, माधव चाहे कितना भी समझदारी से बोले, उसकी बातों को कोई तवज्जो नहीं देता।

एक दिन गाँव में एक बड़ा उत्सव हुआ। मेले की धूम मची थी, ढोल-नगाड़े बज रहे थे। माधव भी वहाँ पहुँचा, लेकिन जैसे ही उसने किसी दुकान से कुछ खरीदने के लिए पैसे बढ़ाए, दुकानदार ने उसका हाथ झटक दिया, "हट! काले हाथों से मेरी दुकान अपवित्र मत कर।" वहाँ खड़े लोग ठहाके मारकर हँसने लगे। माधव की आँखों में आँसू आ गए, लेकिन उसने खुद को संभाला और चुपचाप वहाँ से चला गया।

वह दिन उसके जीवन का सबसे कष्टदायक दिन था। वह रातभर रोता रहा और अगले दिन गाँव छोड़ने का फैसला कर लिया। माँ ने लाख समझाया, लेकिन माधव अब इस जिल्लत से तंग आ चुका था। वह शहर चला गया, वहाँ एक छोटी-सी नौकरी करने लगा। दिन-रात मेहनत कर उसने अपनी तकदीर खुद गढ़ने की ठानी। धीरे-धीरे उसकी मेहनत रंग लाई।

कुछ साल बाद, माधव एक बड़ा व्यापारी बन चुका था। अब उसकी पहचान केवल उसके काम से थी, न कि रंग से। वह अब किसी के भी लिए आदर्श बन चुका था। उसने सोचा, "क्या मेरे गाँव के लोग अब भी मुझे उसी नजर से देखेंगे?" इस सवाल का जवाब पाने के लिए वह वापस गाँव लौटा।

गाँव में उसकी गाड़ी देखते ही लोग चकित रह गए। वही माधव, जिसे उन्होंने कभी दुत्कारा था, अब सम्माननीय बन चुका था। साहूकार रामलाल, जिसने उसे कभी चौपाल पर बैठने नहीं दिया था, अब उसके आगे हाथ जोड़े खड़ा था।

लेकिन माधव को इस दिखावे में कोई खुशी नहीं मिली। वह जान चुका था कि यह इज्जत उसकी पहचान के कारण नहीं, बल्कि उसके पैसे के कारण थी। उसने गाँववालों से कहा, "मैं वही हूँ जिसे तुम लोगों ने

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

तिरस्कार किया था। अगर मेरा रंग पहले गलत था, तो अब सही कैसे हो गया?" यह सुनकर सभी लोग शर्मिंदा हो गए।

माधव ने गाँव में एक स्कूल बनवाया, जहाँ हर जाति, हर रंग के बच्चों को समान रूप से पढ़ने का अवसर मिला। धीरे-धीरे गाँव में बदलाव आने लगा। लोगों ने समझ लिया कि इंसान की पहचान उसका चरित्र होता है, न कि उसका रंग। माधव ने अपने संघर्ष से न केवल खुद को बदला, बल्कि पूरे गाँव की सोच को भी बदल दिया।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

3. मृत्यु का प्रथम परिचय

बच्चे जब खेल में डूबे रहते हैं तब किसी की नहीं सुनते। न उन्हें भूख की चिंता होती है न घर की याद। सिर पर एक ही धुन सवार रहती है....खेलना....खेलना और खेलना। शायद इसी को बचपन कहते हैं। मेरे घर के पास भी कुछ बच्चे ऐसे ही खेलते रहते हैं। एक दिन की बात है। हरदिन की तरह बच्चे खेल रहे थे। खेलते-खेलते अचानक बच्चों को क्या हुआ पता नहीं। किसी बच्चे ने आवाज दी। उसकी आवाज सुन सभी उसकी ओर दौड़े। उत्सुकतावश मैं भी पहुँचा। लेकिन मेरा पहुँचना उनके लिए मायने नहीं रखता था। मेरा होना भी न होने के बराबर था। वहाँ एक चिड़िया जमीन पर पड़ी छटपटा रही थी। चिलमिलाती धूप में उसका इस तरह से छटपटाना बच्चों से देखा नहीं गया। कोई बच्चा कहता- वह उड़ने की कोशिश कर रही है, चलो उसे हाथों में लेकर उड़ाते हैं। कोई कहता नहीं वह भूख-प्यास से तड़प रही है। और कोई कहता उसे छांव में ले जाना चाहिए। जितने मुँह थे उतनी बातें थीं। एक बात जो मुझे सबसे अच्छी लगी, वह थी बच्चों का चिड़िया के प्रति चिंता। इसी चिंता ने उन्हें दया, प्रेम, सहानुभूति का ऐसा पाठ पढ़ाया जिसे पुस्तकें और पाठशाला पढ़ाने में कभी-कभी असमर्थ से लगते हैं। गेहुँए रंग वाली नन्हीं सी चिड़िया न जाने कैसे जमीन पर गिर पड़ी थी। कमजोरी के कारण गिरी थी या फिर किसी हवा के झोंके ने उसे धड़ाम से पटक दिया था, कहना मुश्किल था। बच्चे तुरंत अपने-अपने तरीके से चिड़िया की देखभाल करने लगे। किसी ने अपनी दस्ती निकाली तो किसी ने अपने नन्हें हाथों से उसे उठाया। किसी ने उसे बड़ी ही सावधानी के साथ दस्ती में रखा तो किसी ने उसे पेड़ की

छाया में ले गया। तुरंत उसके लिए खाने के लिए चावल के दाने और पानी की व्यवस्था की गयी। वे खिलाने-पिलाने की लाख कोशिश करते लेकिन चिड़िया थी कि खाने-पीने का नाम नहीं ले रही थी। शरीर में किसी प्रकार की हरकत नहीं थी। वह कब की दुनिया छोड़ चुकी थी। भला बच्चों का भोलापन इस कटु सत्य को स्वीकारेगा? कभी नहीं। मैंने उन्हें समझाया कि चिड़िया मर चुकी है। लेकिन उन्होंने मेरी एक न सुनी।

इस छोटी सी अवधि में उन्होंने चिड़िया का नामकरण भी कर दिया था – सोनी! सभी सोनी-सोनी कहकर चिल्लाने लगे। लेकिन सोनी थी कि टस से मस न होती थी। आखिरकार उन्होंने मान लिया कि सोनी मर चुकी है। मृत्यु के इस प्रथम परिचय से बच्चे बड़े दुखी थे। भारी मन से उन्होंने एक छोटा सा गड्ढा खोदा। उसी में रोते-रोते सोनी को अलविदा कहा। उस दिन बच्चों ने कुछ नहीं खाया। उनके मन में रह-रहकर सोनी की याद आती थी। कभी-कभी लगता है बच्चों में जितनी करुणा, दया, प्रेम, सहानुभूति व ममता होती है उसका एक प्रतिशत भी हम में आ जाए तो इस दुनिया से सभी बुराई मिट सकती है।

सोनी को जहाँ गाड़ा गया था वहीं एक नन्हा सा पौधा उग आया। दो पत्तियों वाला। बच्चों की खुशी का ठिकाना न था। सभी उस पौधे को निहारते थे। देखभाल करते थे। उसके लिए काँटों का बाड़ा बनाया गया। हर दिन पानी डाला जाता था। आज वह पेड़ बड़ा हो चुका है। अब उस पर अनगिनत सोनी आकर बैठती हैं। और हर सोनी मानो एक ही बात कहती हों – मानवता कभी नहीं मरती। केवल अपना रूप बदलती है।

4. आटा है न डाटा है यह तो शिक्षा का घाटा है

सुरेश जी हमारे अच्छे मित्र हैं। पहुचे हुए शिक्षाविद् हैं। चूँकि देशभर में लॉकडाउन है तो उनकी परेशानियाँ बढ़ गई हैं। अरे भाई! उन्हें ऑनलाइन शिक्षण सामग्री जो बनानी है। वर्कशीट, रिविजन शीट, एनालिसीस शीट, ऑब्जरवेशन शीट, एसेसमेंट शीट, यह शीट, वह शीट, फलाना शीट और न जाने कितनी शीट हैं, जिनका नाम लेने में ही उनकी जीभ लड़खड़ाने लगती है। ऊपर से सरकार का इतना दबाव कि उन्हें पसीना पोंछने की फुरसत नहीं। करे भी तो क्या करें? एक दिन उन्होंने मुझे अजीबोगरीब किस्सा सुनाया। पता चला कि वे अपनी पत्नी के साथ एक ऐसे डॉक्टर के पास गए जो घर पर ही अपनी क्लिनिक चलाते हैं। डॉक्टर से उन्होंने कहा- सुनीता बात-बात पर गुस्सा हो जाती है। लॉकडाउन से पहले तक सब कुछ ठीक-ठाक था। किंतु आजकल आँखें मींचना, बड़बड़ाना, कूढ़ना, चिढ़ना, झल्लाना कुछ ज्यादा ही हो गया है। डॉक्टर ने पत्नी की ओर देखा। उसमें तो ऐसे कोई लक्षण दिखायी नहीं दे रहे थे। उन्होंने कहा- आपकी पत्नी तो एकदम ठीक-ठाक है। सुरेश जी को एकदम से गुस्सा आ गया। उन्होंने कहा- डॉक्टर साहब सुनीता मेरी पत्नी नहीं बेटी का नाम है। मेरी बेटी को पता भी नहीं कि मैं यहाँ आया हूँ। यदि उसे पता चल जाए तो आसमान सिर पर उठा लेगी। डॉक्टर साहब ने स्थिति की

गंभीरता को भांपते हुए कहा - आपकी बात तो एकदम सही है। जब से ऑनलाइन क्लासेस आरंभ हुए हैं तब से बच्चे इसी तरह का व्यवहार कर रहे हैं। आप तो इतने बड़े शिक्षाविद् हैं। देश भर में शिक्षा की स्थिति से भली-भांति परिचित होंगे।

डॉक्टर ने जाने-अनजाने में सुरेश जी की दुखती रग पर हाथ रख दिया। सुरेश जी ने देश भर की स्थिति का श्रीगणेश करते हुए कहा – क्या बताऊँ मैं आपको? उत्तर से लेकर दक्षिण तक और पूरब से लेकर पश्चिम तक पूरा भारत परेशान है। ई-पाठशाला, दीक्षा अप्प, और स्वयं से पठन पाठन की सामग्री, स्कूल के व्हाट्सएप समूह से बच्चों / अभिभावक को जोड़कर पढ़ाया जा रहा है। उठने-बैठने, खाने-पीने, पढ़ने-लिखने की समय-सारिणी तय हो चुकी है। अलग-अलग विषय के लिए पाठ को समझाने के लिए वाईस मैसेज का भी प्रयोग किया जा रहा है। बच्चों द्वारा नोट बुक में कार्य करने के बाद वो फ़ोटो उसी व्हाट्सएप ग्रुप में डाले जा रहे हैं और अध्यापक उसकी जाँच कर रहे हैं। त्रुटियाँ सुधार कर पुनः फ़ोटो को अपडेट कर रहे हैं। साथ ही ध्यानाकर्षण, आधारशिला और शिक्षण संग्रह पर अध्यापकों के लिए क्विज का आयोजन किया जा रहा है। इससे अध्यापक अपडेट रहते हैं। दीक्षा अप्प पर टीचर ट्रेनिंग चल रही है। वर्तमान समय में वैश्विक महामारी के कारण विद्यालयो के बच्चों के शिक्षण हेतु पूरे देश में "ऑनलाइन कक्षा शिक्षण कार्यक्रम" चलाया जा रहा है, साथ में मिशन प्रेरणा व मिशन कायाकल्प के कार्यक्रम भी संचालित हैं, जिसके लिए जनपद स्तर /ब्लॉक स्तर पर पर अलग -अलग कई व्हाट्सएप समूह बनाए गए हैं । हर व्हाट्सएप समूह अलग-अलग उद्देश्यों की पूर्ति के लिए बनाया गया है। लेकिन देखा जा रहा है कि शिक्षक ऑनलाइन कक्षा शिक्षण के कंटेंट को अन्य महत्वपूर्ण समूहों में बेतरतीब तरीकों से शेयर कर रहे हैं

जिससे अव्यवस्था जैसी स्थिति उत्पन्न हो रही है। साथ ही विभागीय व्हाट्सएप समूहो को जिस उद्देश्य से बनाया गया है उसके संचालन में कठिनाई आ रही है।

ऑनलाइन केवल नाम के लिए है। घर पर भी बच्चों और अध्यापकों आराम नहीं। शोषण करने के लिए हर स्तर पर व्यवस्थाएँ काम कर रही हैं। विद्यालय स्तर पर बने ऑनलाइन शिक्षण समूहों से केवल बच्चों के कुछ चयनित प्रक्रियाएं जैसे लिखित कार्य/ ऑडियो /वीडियो के सामग्री होनी चाहिए। बच्चे जिस भी स्तर के हों उसी स्तर पर उनको टॉर्चर करना चाहिए। साथ ही शिक्षक द्वारा बच्चों को अभ्यास कार्य हेतु दिए गए कार्य/ वर्कशीट/ आदि की फ़ोटो आदि ब्लॉक या जनपद के ऑनलाइन कक्षा शिक्षण समूहों में पोस्ट न करने की कड़ाई से निर्देश दिए गए हैं। बच्चो के लिखित कार्य की फ़ोटो अधिक होने पर कोलाज बना कर शेयर करने पर स्वीकार करने के नियम बनाए गए हैं। जनपद /ब्लॉक स्तरीय मिशन प्रेरणा व मिशन कायाकल्प के व्हाट्सएप समूह में केवल मिशन प्रेरणा व मिशन कायाकल्प से संबंधित सूचनाएं ही शेयर करने की सुविधा होगी। शिक्षक संकुल हेतु बनाए गए संकुल/ब्लॉक स्तरीय समूहो में केवल मिशन प्रेरणा और शिक्षा शास्त्र व अन्य नवाचारों, ई-कंटेंट,कार्य-दायित्व से जुड़े निर्देश/सूचनाएं से संबंधित पोस्ट ही शेयर करने के लिए कहा गया है। कोई भी शिक्षक किसी भी दशा में बिना पढ़े /समझे /सुने/ देखें कोई पोस्ट लिखित/ऑडियो या वीडियो के रूप में शेयर न करने के कड़े निर्देश दिए गए हैं। प्रत्येक व्हाट्सएप ग्रुप के एडमिन व सह- एडमिन समूह की उद्देश्यों के सापेक्ष ही सदस्यों को पोस्ट शेयर करने, एडमिन ग्रुप में सभी सदस्यों को सक्रिय रखने, समूह में अनुशासन व उसकी प्रासंगिकता को बनाए रखने हेतु समूह सदस्यों को समय-समय पर फटकार लगाने के

आदेश दिए गए हैं। यदि इन निर्देशों का कड़ाई से पालन नहीं हुआ तो इसके लिए किसी भी प्रकार की अनुशासनहीनता जिससे बच्चो के ऑनलाइन शिक्षण कार्यक्रम,मिशन प्रेरणा तथा मिशन कायाकल्प में बाधा उत्पन्न हो रही हो या फिर विपरीत प्रभाव पड़े, उन्हें माफ़ नहीं किया जाएगा।

बच्चा हो या शिक्षक, दोनों परेशान हैं। फिर चाहे वह दिल्ली का हो या गली का। मोबाइल से आँखें गड़ाए छात्रों और शिक्षकों की स्थिति अवर्णनीय है। न बताए बनता है न सुनाए। अब आपको क्या बताएँ कैसी-कैसी बीमारियाँ हो रही हैं। भूलकर भी डॉक्टर के पास चले जाएँ तो बिना पूछे कोरोना के नाम पर 14 दिन के कोरंटाइन में ढकेल दिया जा रहा है। कभी-कभी लगता है इन्न ऑनलाइन कक्षाओं, वर्कशीट, रिविजन शीट, व्हाट्स ग्रुपों से अच्छा तो कोरंटाइन ही है। कम से कम वहाँ ऐसोलेशन में शांति तो मिलती है। कई निजी संस्थान ऑनलाइन शिक्षा के नाम पर बच्चों के अभिभावकों से अंधाधुंध कीमतें वसूल रहे हैं। सरकारी स्कूल के बच्चे इसी भंवर में अटके हैं कि आगे क्या होगा? असल सवाल यह है कि जिन घरों में लॉकडाउन के चलते दो जून की रोटी का जुगाड़ भी मुश्किल हो गया है, उनके बच्चे आनलाइन कक्षाओं में हिस्सा ले पायेंगे, क्या उन घरों में एंड्रायड फोन हैं, और हैं भी तो पहले से ही मुश्किलों में जी रहे ये घर इंटरनेट भरवाने की हालत में हैं? खाने को आटा नहीं है बात हो रही है डाटा की। जो भी हो बच्चे और शिक्षक दो पाटों के बीच में है। दोनों पीसने वाले हैं। देखिए दोनों का आटा कब बनता है।

इतना सुनना था कि डॉक्टर के कान से खून बहने लगा।

📖📖📖

5. वैन अंकल...ओ वैन अंकल

मुझे स्कूल वैन चलाने से ज्यादा बच्चों को वैन में चढ़ते, बैठते, शरारत करते और धूम-धड़ाका मचाते देखना अच्छा लगता है। मेरी उम्र पचास पार कर चुकी है। मैं और मेरी पत्नी कहने को तो दो हैं, लेकिन निस्संतान होने के कारण अपने-अपने अकेलेपन में खोए रहते हैं। पत्नी मेरी सेवा में इतनी व्यस्त रहती है कि मानो मैं ही उसकी संतान हूँ। लेकिन है तो एक औरत ही न! उसे भी बच्चों की किलकारी सुनने, देखने का मन करता ही है। मुझे बहुत सारी नौकरियाँ मिलीं। लेकिन स्कूल वैन चलाने का जब अवसर मिला तो उसे मना न कर सका। बच्चों का सुख देखने को जो मिल जाता है! इसी बहाने पत्नी मेरे साथ वैन में चढ़ती और बच्चों को घर से स्कूल और स्कूल से घर उतारती थी। बच्चों का स्कूल और घर आते-जाते हाय, हैलो, टाटा करना मुझे और मेरी पत्नी की ढलती उम्र के लिए किसी संजीविनी बूटी से कम न था। मानो इसी औषधि से हम दोनों जीवन गुजर बसर कर रहे थे।

जब से कोरोना महामारी के चलते लॉकडाउन आरंभ हुआ हम दोनों की दशा बताने लायक नहीं रही। किसे बताएँ क्या बताएँ? बच्चों को देखने का सुख छूटा तो छूटा साथ ही नौकरी भी छूट गयी। अब खाने के लाले पड़ गए थे। इतने वर्षों में पहली बार बेरोजगारी का अभिशाप हमें त्रस्त कर रहा था। खाने-पीने की सामग्री कुछ ऐसे नदारद हो रही थी जैसे मुट्ठी से रेत। जैसे तैसे जिंदगी तो गुजर बसर कर रहे थे, लेकिन बच्चों को न देख पाने का दुख कुछ ज्यादा ही खाये जा रहा था। घर के सामने पड़ा वैन

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

हमेशा उन बच्चों की याद दिलाता। रह-रहकर तड़पाता। यह बताने का प्रयास करता जिंदगी थमती जा रही है। कानों में अक्सर "वैन अंकल-वैन अंकल" की आवाज़ें गूँजती थीं। उम्र की ढलान पर पड़े हम दोनों को बच्चों की याद जीने नहीं दे रही थी। लॉकडाउन ने बेरोजगारी के साथ-साथ निस्संतान होने का दुख भी अभिशाप में दिया था।

गाढ़ी नींद में लेटे अपने पति को उठाने का प्रयास करती पत्नी, आखिरकार थक-हार गयी। दुनिया के लिए वह बेरोजगार था। था तो वह "वैन अंकल" ही। फिर से "वैन अंकल" कहलाने का सुख न मिलने की निराशा में वह इस दुनिया को अलविदा कह चुका था।

6. आदमी

गाँव के बाहर वह पुराना बरगद वर्षों से खड़ा था, मानो गाँव का पहरेदार हो। उसकी घनी छाँव में न जाने कितनी कहानियाँ जन्मीं और मिट गईं। उसी बरगद के नीचे अक्सर हरिया बैठा रहता। साँवला रंग, सूखे हाथ-पाँव, चेहरे पर गहरी झुर्रियाँ और आँखों में बीते कल की उदासी। गाँव के बच्चे उसे "हरिया काका" कहकर पुकारते, लेकिन बड़े लोग उससे कतराते थे। अजीब विडंबना थी—जो व्यक्ति कभी गाँव का आदरनीय किसान था, वह अब अछूत-सा बना दिया गया था।

हरिया की कहानी किसी समय समृद्धि की मिसाल थी। उसका परिवार सुख-समृद्धि से भरा हुआ था। बीवी, बेटा, बहू—सबके साथ उसका जीवन एक आदर्श परिवार का जीवन था। उसकी खेतीबाड़ी की मिसाल दी जाती थी। जब वह खेत में हल चलाता, तो लगता कि मिट्टी से सोना उगाएगा। चौपाल पर उसकी राय ली जाती थी, लोग उसकी बातें ध्यान से सुनते थे। लेकिन समय के क्रूर हाथों ने सब कुछ बदल दिया। एक महामारी आई और उसके जीवन का हर सहारा छीन ले गई। उसकी बीवी, बेटा और बहू एक-एक कर काल के गाल में समा गए। अब उसका घर, जो कभी हँसी-खुशी से गूंजता था, वीरान पड़ा था।

महामारी के बाद उसकी हालत दिन-ब-दिन बिगड़ती गई। उसके पास जो भी थोड़ी-बहुत संपत्ति थी, वह कर्ज़ में डूबती चली गई। सूदखोर

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

महाजन ने औने-पौने दाम में उसकी जमीन हड़प ली। मजबूरी में अब उसे दूसरों के खेतों में मजदूरी करनी पड़ती थी। दो वक्त की रोटी मिल जाती, यही बहुत था। जब कोई काम नहीं होता, तो वह बरगद के नीचे बैठा अपने पुराने दिनों को याद करता। उसकी आँखों में आँसू छलकते, लेकिन उन्हें पोछने की भी हिम्मत न होती।

गाँव का सबसे अमीर आदमी था चौधरी रघुवीर सिंह। उसके पास धन-दौलत की कोई कमी नहीं थी, पर दिल बहुत छोटा था। वह अपने खेतों का मुआयना करने निकला, तो हरिया को बरगद के नीचे बैठा देखा। उसने बुलाकर कठोर स्वर में कहा, "काम करना है?" हरिया ने सिर हिलाया।

"तो कल सुबह आ जाना। मजदूरी दूँगा, लेकिन कोई ढिलाई नहीं होनी चाहिए।" हरिया ने सिर झुका दिया। उसके पास कोई और विकल्प भी नहीं था।

अगली सुबह जब सूरज उगा, तो हरिया खेत पर पहुँच गया। अब उसकी कमर झुक गई थी, पर उसके हाथों में मेहनत की ताकत थी। सूरज की तपती किरणों के नीचे वह मिट्टी में पसीना बहाने लगा। दिन भर काम करता, लेकिन जो मजदूरी मिलती, वह नाममात्र की होती। जब कभी वह थककर बैठ जाता, तो चौधरी डाँटने लगता, "काम नहीं कर सकता तो भीख माँग! बरगद के नीचे बैठने से पेट नहीं भरता।" हरिया के दिल को यह बात चीर देती, लेकिन वह चुपचाप सब सह लेता। उसके पास कोई और चारा नहीं था।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

गाँव में एक दिन मेला लगा। चारों ओर रौनक थी। बच्चों की हँसी-ठिठोली, ढोल-नगाड़ों की गूंज, मिठाइयों की खुशबू—हर ओर चहल-पहल थी। हरिया भी मेले में गया, लेकिन उसकी जेब खाली थी। वह मिठाइयों की दुकान के पास खड़ा होकर लड्डुओं को ललचाई नजरों से देखने लगा। भूख की तड़प और गरीबी की लाचारी उसे फिर महसूस हुई, और वह आगे बढ़ गया।

तभी उसने देखा कि एक छोटा बच्चा मिठाइयों की दुकान से गिर पड़ा। वह रो रहा था, लेकिन उसके माता-पिता कहीं नजर नहीं आ रहे थे। हरिया तुरंत दौड़ा और उसे गोद में उठा लिया। उसकी आँखों में ममता झलक रही थी। उसने बच्चे के कपड़ों से धूल झाड़ी और उसे चुप कराने लगा। तभी एक घबराई हुई महिला वहाँ पहुँची। वह बच्चे की माँ थी।

"बाबा, आपने मेरे बेटे को बचा लिया।" उसकी आँखों में कृतज्ञता थी। उसने झोले से कुछ पैसे निकाले और हरिया की ओर बढ़ाए। हरिया ने विनम्रता से हाथ जोड़ दिए, "माँ, पैसा नहीं चाहिए। मुझे बस एक इंसान मान लिया जाए, वही बहुत है।" यह कहकर वह चुपचाप वहाँ से चला गया।

गाँव में यह खबर आग की तरह फैल गई। जो लोग कल तक उसे अपशगुनी मानते थे, आज उसकी तारीफ कर रहे थे। चौधरी रघुवीर सिंह भी यह सुनकर हैरान रह गया। उसे अहसास हुआ कि जिस आदमी को वह निकम्मा समझता था, उसमें कितनी इंसानियत थी। अगले दिन जब हरिया खेत पर पहुँचा, तो चौधरी पहली बार नरम लहजे में बोला, "हरिया, आज

से तेरी मजदूरी दोगुनी कर दी जाएगी।" हरिया ने मुस्कुराकर जवाब दिया, "बाबूजी, मजदूरी से पेट भरता है, लेकिन इज़्ज़त से आत्मा।"

धीरे-धीरे गाँववालों का व्यवहार बदलने लगा। बच्चे फिर से उसे "हरिया काका" कहने लगे। कोई उसे देख मुस्कुराता, कोई उसे अपने घर बुलाता। वर्षों बाद उसे लगा कि वह अकेला नहीं है।

बरगद के नीचे बैठा हरिया गाँव को देख रहा था। सूरज डूब रहा था, लेकिन उसकी जिंदगी में उम्मीद की नई सुबह आ रही थी। आदमी के लिए सबसे बड़ी दौलत क्या होती है? सम्मान। और आज, हरिया ने वह फिर से पा लिया था।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

7. कफ़न के वास्ते

गाँव के बाहरी छोर पर एक टूटी-फूटी झोपड़ी थी, जहाँ बूढ़े गंगाराम अपनी बहू सुमित्रा और छोटे पोते मोहन के साथ रहते थे। जीवन की तमाम कठिनाइयों को झेलने के बावजूद, गंगाराम ने कभी भी हिम्मत नहीं हारी थी। परंतु पिछले कुछ दिनों से उनका शरीर जवाब देने लगा था। चेहरे की झुर्रियों में जीवन का सारा संघर्ष दर्ज था।

सुमित्रा दिन-रात खेतों में मजदूरी करके किसी तरह घर चला रही थी। मोहन अभी छोटा था, नादान। उसे क्या पता कि उसकी दुनिया किस मुसीबत में घिरी हुई है। वह तो दिनभर गलियों में खेलता फिरता और रात को दादी के बगल में सो जाता।

गंगाराम की तबीयत बिगड़ती जा रही थी। डॉक्टर को दिखाने का सवाल ही नहीं उठता था। दो जून की रोटी का भी ठिकाना नहीं था, दवा कहाँ से आती? गंगाराम ने अपनी बहू को बुलाया और काँपते स्वर में कहा, "बेटा, अब मेरे जाने का समय आ गया है। बस, मेरी एक अंतिम इच्छा पूरी कर देना। मुझे अच्छे कफ़न में विदा करना।"

सुमित्रा की आँखों में आँसू छलक पड़े। घर में खाने तक के लाले पड़े थे, वह कफ़न कहाँ से लाएगी? परंतु यह सोचकर कि यही उनके अंतिम शब्द हैं, उसने सिर हिलाकर हामी भर दी।

गंगाराम ने मोहन को पास बुलाया और उसे प्यार से अपनी कमजोर हथेलियों से सहलाते हुए कहा, "बेटा, माँ की बात हमेशा मानना और अच्छा इंसान बनना।" मोहन समझ नहीं पा रहा था कि दादा क्यों ऐसा बोल रहे हैं।

अगली सुबह गंगाराम ने संसार को अलविदा कह दिया। सुमित्रा फूट-फूट कर रो पड़ी। मोहन भी सहमा हुआ माँ के आँचल से लिपट गया। लेकिन अब सबसे बड़ी समस्या थी—कफ़न लाने की।

सुमित्रा ने गाँव के साहूकार रामलाल से मदद माँगी, पर उसने साफ़ मना कर दिया। "हम उधार नहीं देते, खासकर जब उधार लौटाने की कोई गारंटी न हो।"

थकी-हारी सुमित्रा घर लौटी। पड़ोसियों ने मिलकर शव यात्रा की तैयारी शुरू की। परंतु बिना कफ़न के गंगाराम का अंतिम संस्कार कैसे होता? तभी गाँव के बुजुर्ग हरिप्रसाद आगे आए। उन्होंने अपनी पुरानी चादर निकाली और बोले, "बेटी, यह कफ़न के लिए रख लो। गंगाराम भाई को बिना कफ़न के नहीं जाने देंगे।"

सुमित्रा की आँखों से आँसू बह निकले। उसने चादर ली और गंगाराम को ओढ़ा दिया। अंतिम संस्कार संपन्न हुआ, लेकिन मन में एक पीड़ा थी कि अपने ससुर की अंतिम इच्छा पूरी न कर पाई।

कुछ दिनों बाद गाँव में मेला लगा। मोहन ने जिद की कि वह मेला देखने जाएगा। सुमित्रा ने बहुत समझाया, "बेटा, पैसे नहीं हैं। मेले में क्या करोगे?"

पर मोहन मानने को तैयार न था। आखिर सुमित्रा ने पुराने सामानों में कुछ बची-खुची चीजें बेचीं और दो रुपये का इंतजाम किया। मोहन

खुशी-खुशी मेले चला गया। वहाँ मिठाइयाँ, खिलौने, झूले सबकुछ था। पर मोहन सीधा कपड़े की दुकान पर गया। उसने सफेद कपड़े का एक छोटा सा टुकड़ा खरीदा और दौड़ता हुआ श्मशान पहुँचा।

गंगाराम की समाधि के पास बैठकर उसने वह कपड़ा वहाँ रखा और मासूमियत से बोला, "दादा, मैं कफ़न ले आया। अब आपको ठंड नहीं लगेगी।"

यह देख वहाँ खड़े लोग स्तब्ध रह गए। किसी की आँखों में आँसू थे, किसी के होंठ काँप रहे थे। सुमित्रा ने अपने बेटे को गले लगा लिया। उसने देखा कि गरीबी ने उससे बहुत कुछ छीना था, पर उसके बेटे का दिल अमीर था।

8. नकली नहीं असली गधा चाहिए

भारत चुनावों का देश है। यहाँ पूरे साल अलग-अलग चुनाव बड़े ही धूमधाम से मनाए जाते हैं। इसे सभी धर्मों के लोग एक साथ मिल-जुलकर मनाते हैं। फिर चाहे वह देश का लोकसभा चुनाव हो या फिर राज्यों का विधानसभा चुनाव, फिर चाहे नगरपालिका का चुनाव हो या स्थानीय चुनाव। यहाँ सभी चुनाव खुशी और जुनून के साथ मनाए जाते हैं। वास्तव में चुनाव देश की धार्मिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक व सामाजिक एकता की महानता को उजागर करते हैं । ये चुनाव हमारा गौरव हैं। विभिन्न जातियों, भाषाओं, प्रांतों व भिन्न-भिन्न संप्रदायों के विभिन्न रंगों को एकाकार करने में हमारे चुनाव सदैव ही प्रमुख भूमिका निभाते हैं। विभिन्नताओं के इस देश में होने वाले चुनावों का स्वरूप भी भिन्न है। कुछ त्योहारों का स्वरूप इतना व्यापक है कि इसमें देश के अधिकांश लोग भाग लेते हैं जैसे लोकसभा चुनाव, वहीं कुछ त्योहार स्थानीय होते हैं जो किसी स्थान विशेष तक ही सीमित होते हैं जैसे सरपंच चुनाव। इन चुनावों के चलते सभी वर्गों में एक नई उत्सुकता दिखायी पड़ती है। नेतागण इसलिए प्रसन्न रहते हैं कि हमने जनता को चुनाव के नाम पर चूना लगाकर ठग लिया। वहीं जनता मन ही मन इसलिए प्रसन्न रहती है कि वह सभी के पास ले पाकर वोट उसी को देती है जिसे वे देना चाहते हैं।

जैसे-जैसे समय बदल रहा है वैसे-वैसे नेताओं और जनता की सोच भी बदल रही है। हाल ही में एक घटना घटी। एक फलाँ नेता एक आम नागरिक के पास गया। हाथ जोड़कर चिरौरी करते हुए वोट माँगने का प्रयास किया। साथ ही दो हजार रुपये का लालच भी दिखाया। लेकिन नेता

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

को आश्चर्य तब हुआ जब आम से लगने वाले खास आदमी ने रुपया लेने से मना कर दिया। उसने नेता से कहा - आप मुझे दो हजार रुपये के बदले एक गधा लाकर दे दें। तब मैं अपना वोट आपको ही दूँगा। नेता को आम आदमी का ऑफर अच्छा लगा। वह बाजार पहुँचा। गधा खरीदने के लिए मोल-तोल करने लगा। कोई भी गधा रुपये दस हजार से कम का न था। थक हारकर निराश नेता उस आम आदमी के पास पहुँचा। नेता ने उससे कहा – गधे की कीमत दस हजार से कम नहीं है। मैं इतना रुपया नहीं लगा सकता। यह दो हजार लेकर मामला यहीं रफा-दफा करो।

आम आदमी बड़ा समझदार था। उसने नेता से कहा – मेरा माल ढुलाई का छोटा सा व्यापार है। इसके लिए मुझे एक गधे की जरूरत थी। यदि आप मुझे एक गधा लाकर दे देते तो माल ढुलाई का मेरा हल्का-फुल्का व्यापार इससे चल जाता। आप दो हजार रुपये में एक गधा तक नहीं खरीद सके और चले हैं हमें खरीदने? दो हजार रुपये के लिए मेरा और मेरे परिवार के सदस्यों का वोट बिक जाए, इतना सस्ता नहीं है हमारा जमीर। हम बिकाऊ नहीं हैं। क्या आप मेरा और मेरे बच्चों का भविष्य गधे से भी कम कीमत में खरीदना चाहते हैं? एक बार रुपया लेकर वोट डाल दिया तो समझो आने वाले कई सालों तक हमें चूस-चूसकर अधमरा कर दोगे। इस महंगाई के जमाने में आपके ये चंद रुपये कब रफू चक्कर हो जाएँ पता ही नहीं चलेगा। इसलिए इन रुपयों को अपने जेब में रखिए। हो सके तो एक असली गधा लाकर दीजिए, आप जैसे नकली गधे तो हर दिन घर के चक्कर काट रहे हैं।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

9. अब न कोई अर्थी उठने पाए

राजय्या घर से निकला था। थोड़ी दूर पर पड़ने वाले कस्बे से घर के लिए कुछ चीज़ें ख़रीदने। काश कोई समझ पाता वह घर से नहीं दुनिया से निकला था। घर लौटकर आने का सवाल ही नहीं था। उसने जाते-जाते जो चीज़ें घर भेजी थीं, उनमें कुछ चूड़ियाँ, क़फ़न, सफ़ेद साड़ी, हल्दी, सिंदूर और फूलों का एक हार था। घर के लिए उसने यही चीज़ें खरीदी थीं। घर में खाने के लाले पड़ गए थे। साहूकारों की धमकियाँ पल-पल बेचैन कर रही थीं। दरअसल उसने ये सामान अपनी ही अर्थी को सजाने के लिए खरीदा था। पहले से ही घर में एक कॉपी पड़ी है जिसमें किस-किस साहूकार से कितना-कितना रुपया उधार लिया है, फलाना दुकानवाले से खेती के लिए छिड़काव की दवाइयों, बीज और न जाने कितने तरह के कर्जों की 40-50 लोगों की एक लंबी लिस्ट पड़ी है। उसे पता था कि मरने के बाद अर्थी के सामान के लिए घर वाले बहुत परेशान होंगे। जाते-जाते उन्हें परेशान नहीं करना चाहता था। इसीलिए वह अपनी विदाई की तैयारी खुद कर गया।

यह किस्सा महबूबनगर के एक किसान का नहीं पूरे देश भर का है। आए दिन यहाँ सूखे से न जाने कितनी अर्थियाँ उठती हैं। अंतर केवल इतना होता है कि हर कोई राजय्या की तरह समझदार नहीं है, जो जाते-जाते अपनी अर्थी का सामान खुद खरीदकर दे जाए। पश्चिमी राजस्थान, गुजरात, पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा उत्तर-पश्चिम मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश में रायलसीमा, तेलंगाना में दक्षिणी तेलंगाना तथा महाराष्ट्र के मराठवाड़ा एवं विदर्भ प्रदेश सूखे व अकाल से मरने वालों की दास्तान चीख-चीख कर बयान करते हैं।

सूखाग्रस्त क्षेत्र में रहने वाले लोग वहाँ की आबोहवा से इतने वाकिफ होते हैं कि उनके दिल में सूखे व अकाल की जोरदार धड़कनें सुनाई देती हैं। इनकी पीड़ा इतनी-उतनी नहीं है। वे बताएँ तो क्या बताएँ? कभी मानसून की अनिश्चितता तो कभी वर्षा की विभिन्नता, कभी अनियमित चक्रवात तो कभी तापमान में वृद्धि इन्हें तोड़कर रख देती है। वनों का विनाश, बंजर भूमि में वृद्धि, मरुस्थलीकरण, मिट्टी की संरचना, जल-प्रबंधन पर ध्यान न दिया जाना, जीव नदियों का अभाव और ऊपर से सरकार की उदासीनता जैसे ऐसे कई कारण हैं जो इन्हें मरने पर मजबूर कर देते हैं। ऐसी स्थितियों में आदमी जिए तो जिए कैसे?

अकाल या सूखा केवल एक समस्या नहीं है। यह तो समस्याओं का बहुत बड़ा पैकेज है। इस क्षेत्र के किसी किसान के साथ बैठकर उनसे कुछ देर बात करने पर पता चलेगा कि इनका जीवन इतना नरक समान गुजरता है। वास्तव में वे अकाल व सूखा के साथ जिंदगी गुजर बसर नहीं करते। वे जिंदगी गुजर बसर करते हैं मौत का अभिशाप बनी परिस्थितियों से। जो लोग छोटी-छोटी चीज़ों की कमी से अपने जीवन से हाथ धो बैठते हैं, उन्हें कभी इनके पास आकर बैठना चाहिए। कुछ पल गुजारना चाहिए। तब पता चलेगा कि वास्तव में जिंदगी होती है क्या। यहाँ वे सिंचाई के लिए जल की बूँदों के लिए तरसते हैं। पीने के पानी के लिए मरते हैं। खाने के दाने-दाने के लिए तड़पते हैं। अपने मवेशियों के चारे के लिए बिलखते हैं। बीज, खाद जैसे कच्चे माल की कमी से परेशान रहते हैं। महंगाई की मार से कराहते रहते हैं। जल-जंगल-जमीन की आह भरे करवटों से बेचैन रहते हैं। कभी बिजली, बेरोजगारी और अनबियाही बेटियों को लेकर पल-पल घुटते, गिरते, मरते रहते हैं।

कहने को तो विश्व सूखा व मरुस्थलीकरण दिवस सन् 1995 से हर वर्ष 17 जून को मनाया जाता है, लेकिन इन क्षेत्रों में रहने वाला किसान पहले भी मर रहा था, आज भी मर रहा है। यह दिवस किताबों में, सभाओं-सम्मेलनों और चाय-बिस्कुट खाने के लिए अच्छा लगता होगा, किसानों के लिए यह तो दर्द भरा दिन है। वह कथनी नहीं करनी के रूप में इस दिवस को देखना चाहता है। वह चाहता है कि जो बड़े-बड़े सपने उसे दिखाए जाते हैं, वह न दिखाएँ। बल्कि छोटी-छोटी सहायताओं जैसे - कोई उसे बताए कि कृषि जलवायु के आधार पर कौन सी फसल डाली जाए, वैकल्पिक कृषि के रूप में शुष्क कृषि कैसे करें, कम वर्षा वाले क्षेत्रों के लिए कपास, गेहूँ, जवार की किस वैरिटी का चयन करें, विशेष सिंचाई साधन जैसे- टपक सिंचाई (Drip Irrigation) व छिड़काव सिंचाई (Sprinkle Irritation) के लिए क्या करें, नहरों के सतह का पक्काकरण, उचित जल-क्षेत्र प्रबंधन, जल संरक्षण, मिट्टी-संरक्षण, चारे की बचत, बंजर भूमि का विकास, गैर-कृषि वैकल्पिक उपायों जैसे- पशुपालन और डेयरी उद्योगों का विकास, लघु तथा कुटीर उद्योग का विकास कैसे करें के बारे में बताया जाए। किसान भारत के अन्नदाता हैं। वे विश्वासघाती नहीं हैं। उन पर भरोसा कर उन्हें आर्थिक सहायता करने की आवश्यकता है। वे भूखे रहकर देश का पेट भरते हैं। ऐसे भूखों को एक निवाला भी नहीं खिला सकते? थोड़ा सा प्यार, थोड़ा सा स्नेह, थोड़ा सा उनके प्रति ध्यान न जाने कितने राजय्या को बचा सकता है। क्या हम एक अर्थी भी उठने से नहीं बचा सकते? आइए हाथ बढ़ाएँ जहाँ राजय्या को भी जीने का मौका मिल सके।

10.माँ की ममता

गाँव के एक कोने में स्थित वह छोटी-सी झोंपड़ी, जहाँ वर्षों से सावित्री अपने इकलौते पुत्र मोहन के साथ रहती थी। पति की मृत्यु के बाद उसने अपने आँसुओं को चूल्हे के धुएँ में छिपा लिया था और मजदूरी कर बेटे को पढ़ाने में जुट गई थी। चाहे खुद रूखी रोटी से पेट भरना पड़े, लेकिन मोहन की किताबों में कोई कमी न हो, इसका उसने हमेशा ध्यान रखा। गाँववालों ने कई बार समझाया—"बुढ़ापे के लिए भी कुछ बचा लो, सावित्री!" पर उसकी दुनिया तो बस अपने बेटे के भविष्य तक ही सीमित थी।

समय बीतता गया। मोहन ने अपनी माँ की तपस्या के बल पर कठिन परीक्षा पास की और शहर जाकर बड़ा अफसर बन गया। बड़ी कोठी, मोटर गाड़ी—सब कुछ था उसके पास, बस समय नहीं था अपनी माँ के लिए। पहले तो सावित्री यह सोचकर खुश हो जाती कि बेटा व्यस्त है, लेकिन धीरे-धीरे वह समझने लगी कि अब मोहन के लिए उसका महत्व कम हो गया है।

हर त्योहार पर वह दरवाजे की ओर टकटकी लगाए बैठी रहती, कि शायद इस बार मोहन आएगा, लेकिन इंतजार हर बार लंबा होता गया। पड़ोस के रामदीन ने कहा—"बहू-बेटे से कहो, तुझे अपने पास ले जाएँ।" सावित्री हँस पड़ी, "बेटे की खुशी में ही मेरी खुशी है।" वह भीतर से टूट

चुकी थी, लेकिन बेटे की परछाईं तक पर आँच न आने देने का संकल्प उसने ले रखा था।

फिर एक दिन गाँव में यह खबर आई कि मोहन की पत्नी बीमार है और इलाज के लिए बहुत पैसे चाहिए। सावित्री ने बिना एक पल गँवाए अपनी झोंपड़ी बेच दी और पैसे भेज दिए। जब गाँव वालों ने पूछा—"अब तू कहाँ जाएगी, सावित्री?" तो उसने आँचल से आँखें पोंछते हुए कहा—"माँ के लिए घर ईंट-पत्थर से नहीं बनता, बेटे की खुशियों से बनता है।"

झोंपड़ी बिक चुकी थी। सावित्री अब बेघर थी, लेकिन मन में एक अजीब-सी तसल्ली थी कि उसने बेटे के लिए आखिरी सेवा भी कर दी। वह गाँव के मंदिर में रहने लगी। मंदिर के पुजारी ने उसे शरण दे दी, लेकिन बूढ़ी हड्डियाँ अब जवाब देने लगी थीं। एक रात ठंड बहुत तेज थी। मंदिर के द्वार पर बैठी सावित्री को ठिठुरन महसूस हुई, लेकिन उसके पास कोई चादर तक न थी। वह कंपकंपाती रही, लेकिन दिल में यही सोचती रही कि उसका बेटा सुखी रहे।

सुबह जब मंदिर के पुजारी ने देखा, तो सावित्री अब इस दुनिया में नहीं थी। गाँव में यह खबर आग की तरह फैल गई। मोहन जब गाँव आया, तो देखा—माँ की झोंपड़ी अब किसी और की थी, माँ का अस्तित्व कहीं खो गया था।

वह रोता हुआ मंदिर पहुँचा, जहाँ पुजारी ने उसे एक पुरानी चिट्ठी दी। काँपते हाथों से उसने उसे खोला, माँ ने लिखा था—"बेटा, तेरा सुख ही मेरी संपत्ति थी। मैंने अपना सब कुछ तुझ पर न्योछावर कर दिया, अब निश्चिंत हूँ।"

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

मोहन के हाथ काँप उठे, आँखों से अश्रु की धार बह चली, लेकिन अब पछताने के लिए भी माँ नहीं थी। उसके पास अब महल था, लेकिन उसे पालने वाली माँ की झोंपड़ी नहीं थी। वह बहुत देर तक मंदिर की सीढ़ियों पर बैठा रोता रहा, लेकिन अब कोई नहीं था जो उसके आँसुओं को पोछे। माँ जा चुकी थी, अपने बेटे की खुशी में सब कुछ न्योछावर कर, खुद को खोकर।

यह जीवन का सबसे बड़ा सत्य था—माँ का प्रेम निस्वार्थ होता है, लेकिन अक्सर उसकी कद्र तब होती है, जब वह दूर चली जाती है।

मोहन अब एक बदले हुए व्यक्ति की तरह था। उसने अपनी पत्नी और परिवार के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को समझा। उसने अपने जीवन को फिर से परखा और अपने बच्चों को माँ की कहानियाँ सुनाने लगा। उसने अपने दिल में यह ठान लिया कि अब वह किसी भी वृद्ध को अकेलेपन का दर्द नहीं झेलने देगा। उसने एक वृद्धाश्रम खोलने का निश्चय किया, जिसमें सभी वृद्ध माताओं के लिए रहने और खाने की उत्तम व्यवस्था हो। यह उसकी माँ को सच्ची श्रद्धांजलि थी।

माँ का बलिदान व्यर्थ नहीं गया। उसके आँसू, उसकी तपस्या और उसका प्यार एक नई रोशनी बनकर मोहन के जीवन में प्रकाशित हुआ। मोहन का जीवन अब सिर्फ खुद के लिए नहीं था, बल्कि उन सभी माँओं के लिए था, जो अपने बच्चों के सुख के लिए खुद को भुला देती हैं।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

11. ज़िंदगी से लिपटकर खुशियाँ समेटूँगी

अस्पताल के बरामदे में मात्र 6 कुर्सियाँ थीं। और वहाँ आए रोगियों की संख्या आठ। कुर्सी न होने के कारण खड़े दो रोगियों में राधा एक थी। वह रह-रहकर बेचैन हो रही थी। अस्पताल के बरामदे में इधर-उधर चक्कर काट रही थी। थोड़ी-थोड़ी देर में व्हाट्सएप चेक करना, कभी नीचे देखना, कभी ऊपर देखना उसकी झुंझलाहट को दर्शा रहा था। अपने मामा की सलाह पर वह अस्पताल आयी थी। शहर के पहुँचे हुए डॉक्टर होने के कारण दूर-दूर से रोगी उनके पास आते थे। राधा के अलावा एक और महिला बड़ी शांत अपने में गुमसुम दीवार से सटकर खड़ी थी। उसकी आँखों में कई सारे प्रश्न चिह्न थे। उसे देखकर राधा से रहा नहीं गया। वह उसके पास गयी। पूछने पर अपना नाम सीता बताया। थोड़ी ही देर में दोनों एक-दूसरे से घुलमिल गए। पहले तो लगा उनका यह घुलना-मिलना कुर्सियों की कमी के कारण हुआ। बाद में पता चला कुर्सियाँ न भी होती तो वे एक-दूसरे से जरूर घुलमिल जातीं।

राधा के पूछने पर सीता ने अपने बारे में बताना आरंभ किया। वह जब 9वीं में पढ़ रही थी, तभी उसे अपने सहपाठी से प्यार हो गया। प्यार का यह चक्कर उसकी पढ़ाई पर बन आया। पढ़ाई छुड़वा दी गयी। सहपाठी भी कोई और नहीं उसी के रिश्तेदार का लड़का था। पढ़ाई छूटने के बाद भी यह किस्सा थमा नहीं। दोनों का प्यार छिपते-छिपाते चलता रहा। आखिर वह दिन आ ही गया जब लड़के के कहने पर घरवालों ने

लड़की का हाथ मांग लिया। पहले तो बहुत आनाकानी हुई लेकिन बाद में विवाह के लिए मान लिया गया। प्रेम विवाह होने के कारण सीता के घरवालों ने लड़के को कुछ खास दिया नहीं। वैसे वह सीता को इतना चाहता था कि उसे किसी चीज़ की इच्छा हुई नहीं। वह उसे बहुत प्यार करता है। वह चाय की डबरी चलाता है। इसी डबरी से उसने थोड़े-थोड़े पैसे जमाकर सीता के लिए कान, नाक और गले के जेवर बनवाये। सीता भी अपने पति से प्यार बहुत प्यार करती है। जब-तब पति के जेब से मिले, घर में इधर-उधर रखे रुपए-पैसों को अलमारी के एक कोने में छिपा-छिपाकर रखती थी। वह उसके लिए स्मार्ट फोन खरीदना चाहती थी। दोनों का प्यार इतना गहरा था कि वह बिना थके एक टूक बताते चली जा रही थी।

राधा को लगा सीता झूठ बोल रही है। उसके बदन पर एक गहना न था। उसके झूठ को पकड़ने के लिए जब गहनों के बारे में पूछा तब वह अवाक् रह गयी। उसने बताया कि उसका पति चाय की डबरी पर दिन भर खड़े-खड़े काम करने से उसे रीढ़ की हड्डी में टी.बी. हो गया है। पिछले दो महीनों से इलाज चल रहा है। इलाज के चक्कर में सारे गहने अस्पताल की भेट चढ़ गए। लेकिन उसे इस बात का दुख नहीं है। वह अपने पति को अपना गहना मानती है। इसलिए गहनों का उसे रत्तीभर दुख नहीं है। उसका मानना है जिंदगी रुपये-पैसों में नहीं प्यार में बसती है। प्यार है तो रुपया-पैसा फिर आ जाएगा। नहीं भी आएगा तो जैसे-तैसे बचे-खुचे में जिंदगी गुजार सकते हैं।

डेढ़ घंटे बाद कंपाउंडर ने राधा को आवाज दी। पता नहीं उसे क्या हुआ? वह अपने पर्स से दस हजार रुपए और अपना विजिटिंग कार्ड निकालकर सीता के हाथ में रखते हुए बोली – मैं यहाँ पर अपने तनाव का

इलाज करवाने आयी थी। मैं ब्यूटी पार्लर चलाती हूँ। हर दिन बड़े आराम से तीस-चालीस हजार कमा लेती हूँ। मेरे पति का बहुत बड़ा व्यापार है। वह भी हर दिन लाख-डेढ़ लाख कमा लेते हैं। लेकिन हम दोनों में छोटी-मोटी बातों के लिए आए दिन बहस और झगड़े होते रहते हैं। कभी खाने में नमक-मिर्च के स्वाद को लेकर, कभी घूमने को लेकर तो कभी एक-दूसरे को विश न करने को लेकर। ऐसी जिंदगी से परेशान हो गयी हूँ। कभी बहस-बहस में झगड़ा इतना बढ़ जाता कि छुड़ाने के लिए आसपास के लोगों को आना पड़ता था। कुछ दिन पहले मैंने आत्महत्या करने की कोशिश भी की। जैसे-तैसे मुझे बचाया गया। यह सब देखकर ही मामा ने मुझे यहाँ भेजा है। लेकिन तुमसे मिलने के बाद लगा कि मुझे किसी डॉक्टर की जरूरत नहीं है। जिंदगी दौड़-धूप में नहीं बल्कि एक-दूसरे के लिए समय निकालने, छोटी-छोटी खुशियों को थामने और प्यार को बाँटने से गुजरती है। सच तो यह है कि जिंदगी हाथों की लकीरों में नहीं सामने वाले की खुशी में होती है। अब मुझे लबों पर बनावटी मुस्कान की जरूरत नहीं है। अब मैं जिंदगी से लिपटकर खुशियाँ समेटूँगी। शायद आज मैं डॉक्टर से मिलती भी तो वह मेरा इलाज नहीं कर पाते। थैंक यू सीता! तुमने मुझे जिंदगी जीने का सही सलीका सिखाया। तुम्हें और रुपयों की जरूरत हो तो बेझिझक मेरे घर आ जाना।

इतना कहते हुए राधा अपनी बड़ी सी कार में चढ़कर पल भर में ओझल हो गयी। सीता कृतज्ञता भरी नजर से उसे एक टूक देखती रह गयी।

12. रैनबसेरा

'सर्दी की रातें जब हड्डियों को गला देने वाली ठंड से भर जाती हैं, तब नगर की गलियों में कुछ ऐसे भी लोग होते हैं जिनके पास सिर छिपाने को कोई कोना नहीं। ऐसे ही बेघर लोगों के लिए बने इस 'रैनबसेरा' में जीवन की कितनी ही करुण कहानियाँ रोज जन्म लेती और दम तोड़ती हैं। यह केवल ईंट और गारे की बनी एक इमारत नहीं, बल्कि पीड़ा, असहायता और बेबसी का प्रतीक है। वहाँ की दीवारें उन चीखों की साक्षी हैं जो इंसान की मजबूरी और समाज की बेरुखी को चुपचाप सहती हैं।

उस दिन जब सर्दी अपने चरम पर थी, तभी रैनबसेरा की चौखट पर एक अधेड़ उम्र का व्यक्ति काँपता हुआ आकर बैठ गया। उसका नाम था रामस्वरूप। फटेहाल कपड़े, चेहरे पर जमी हुई झुर्रियाँ और आँखों में अजीब-सी उदासी। वह दरवाजे पर बैठकर कांप रहा था, पर भीतर जाने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहा था। चौकीदार ने झुँझलाकर कहा—"अरे बाबा, अंदर क्यों नहीं आते? यहाँ बैठे-बैठे जान दोगे क्या?" लेकिन रामस्वरूप की आँखों में कोई दूसरी ही चिंता झलक रही थी।

वह जैसे ही अंदर आया, उसके साथ ठंड की वह लहर भी भीतर चली आई जो बाहर की दुनिया में अनगिनत बेसहारा लोगों को कंपकंपा रही थी। रैनबसेरा में पहले से ही कई लोग एक-दूसरे से सटे हुए बैठे थे, ताकि शरीर की गरमी से ठंड को कुछ हद तक हराया जा सके। वहाँ कोई

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

मोची था, कोई रिक्शेवाला, कोई छोड़ दी गई विधवा, कोई भाग्य का मारा बूढ़ा। रामस्वरूप भी एक कोने में सिकुड़कर बैठ गया।

थोड़ी ही देर में पास बैठा एक युवक, जो शायद किसी होटल में जूठे बर्तन धोता था, उससे बोला—"बाबा, पहली बार देख रहे हैं आपको! कहाँ से आए?" रामस्वरूप ने काँपती आवाज़ में उत्तर दिया, "बेटा, इस शहर में अपना कोई ठिकाना नहीं। कभी एक घर था, एक परिवार था, पर अब... सब कुछ खो दिया।"

युवक ने सहानुभूति से देखा। "कैसे बाबा?" उसने पूछा। रामस्वरूप के सूखे होंठ कुछ बुदबुदाए, पर उसने कुछ कहने के बजाय अपनी आँखों को बंद कर लिया। कुछ घाव ऐसे होते हैं जिन्हें शब्दों में कहना असंभव होता है।

रैनबसेरा में रहने वाले अधिकतर लोग अपने अतीत को लेकर चुप ही रहते थे। वहाँ कोई अपना दुःख नहीं बखानता था, क्योंकि हर किसी की अपनी अलग ही कहानी थी—और हर कहानी में दर्द था, बेबसी थी। रामस्वरूप के पास भी अपना एक अतीत था, जो उसे रातभर सोने नहीं देता था।

कभी वह गाँव का एक संपन्न किसान था। हरे-भरे खेत, घर में बाल-बच्चों की चहल-पहल। लेकिन समय ने ऐसी करवट ली कि सूखा पड़ा, कर्ज़ बढ़ा, और साहूकारों ने सब कुछ छीन लिया। खेत बिक गए, घर नीलाम हो गया, और वह बेघर हो गया। अपने ही गाँव में अपमान सहते-सहते वह शहर चला आया, इस उम्मीद में कि शायद कहीं कोई सहारा मिलेगा। लेकिन शहर ने भी उसकी झोली में ठोकरों के सिवाय कुछ नहीं डाला।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

रात गहराती जा रही थी। रैनबसेरा में ठिठुरते लोगों की साँसें एक-दूसरे से टकराकर गरमी देने की नाकाम कोशिश कर रही थीं। किसी को कल के भोजन की चिंता थी, किसी को रोज़ी-रोटी की। लेकिन रामस्वरूप के मन में इन सबसे अलग एक ही प्रश्न घूम रहा था—"क्या सच में इस दुनिया में उसके लिए अब कोई जगह नहीं बची?"

तभी बाहर से किसी बच्चे के रोने की आवाज़ आई। चौकीदार ने दरवाजा खोला तो देखा—एक औरत अपने गोद में बच्चे को लिए खड़ी थी। उसका चेहरा झुलसा हुआ था, आँखों में असहायता थी। उसने काँपते होठों से कहा, "भैया, मुझे अंदर ले लो। मेरा बच्चा ठंड से मर जाएगा!" चौकीदार कुछ कहता, उससे पहले ही रामस्वरूप ने अपने पास की चादर उठाई और उसकी ओर बढ़ा दी।

रैनबसेरा में ऐसी ही अनगिनत कहानियाँ रोज़ जन्म लेती थीं। रामस्वरूप ने ठंडी साँस ली और अपनी जगह से उठा। उसने देखा कि वह औरत अपने बच्चे को चादर में लपेटे किसी कोने में दुबकी हुई थी। न जाने क्यों, रामस्वरूप को उसमें अपनी बेटी का अक्स दिखा। उसकी भी एक बेटी थी, जो न जाने कहाँ होगी।

रात बीत रही थी। कुछ लोग सो चुके थे, कुछ अब भी सर्द हवा से लड़ रहे थे। लेकिन रामस्वरूप की आँखों में नींद नहीं थी। उसने एक लंबी साँस ली और बगल में बैठे उस युवक से कहा, "बेटा, कल सुबह से कुछ काम ढूँढना होगा। अब और इस हालत में नहीं रह सकता।"

युवक ने उसकी ओर देखा और हल्के से मुस्कुराया। "बाबा, आप अकेले नहीं हैं। हम सब साथ हैं।"

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

रैनबसेरा की दीवारों ने यह सुना और चुपचाप इस कहानी को अपने भीतर समा लिया। शायद यह दुनिया किसी के लिए भी पूरी तरह बेगानी नहीं होती, बस सही जगह और सही लोग मिलना जरूरी होता है।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

13. चला तो चाँद तक, नहीं तो शाम तक

फुटपाथ किनारे मारुति ओमिनी कार में एलईडी बल्बों का ठेला लगाए एक दुकानदार लगातार एक ही धुन बजाए जा रहा था- 'घर को चमकाना है, खुद को रोशन करना है, तो आइए भाई साहब, कदरदान! मेहरबान! दुनिया का सबसे अच्छा एलईडी बल्ब। तीन एलईडी बल्ब सिर्फ सौ रुपए में। सौ रुपये में। सौ रुपये में।' मैं जब भी बाजार से गुजरता तो यह धुन जरूर सुनता। किंतु आज मैं उसके पास ही चला गया। घर में बल्ब जो खराब हो गया है! अब क्या बताऊँ साहब रात में शौचालय जाने में बड़ी तकलीफ होती है। ऊपर से श्रीमती जी की रट-रट! उनका एक ही कथन – 'तुमसे कुछ नहीं होगा। सब मुझे ही करना होगा। कितने दिनों से कह रही हूँ बल्ब खराब हो गया, लेकिन आपके कानों पर तो जूँ तक नहीं रेंगता।' मुझ में और इतनी सहनशीलता नहीं थी कि पत्नी की यह रट-रट सुन सकूँ। गजब तब हुआ जब बल्ब खराबी का समाचार पड़ोस तक पहुँच गया। पड़ोसी ने हमसे सहायता की भावना में कहा – साहब लगता है आजकल आप बड़े व्यस्त हैं। कहें तो मैं बल्ब लाकर दे दूँ। इतना सुनना था कि मेरा खून खौल उठा। थोड़ा बहुत योग करता था सो खुद को नियंत्रित कर पाया। नहीं तो साहब उस दिन उनकी खैर नहीं थी। मैंने कहा – कोई जरूरत नहीं है। मैं बाजार जा रहा हूँ। खरीद लूँगा।

मुझे डर इस बात का था कि कहीं बल्ब खराबी का किस्सा रिपब्लिक चैनल पर न आ जाए। वरना अरनब गोस्वामी चिल्ला-चिल्लाकर 'नेशन वान्ट टू नो' के जरिए पूरी दुनिया को बता देगा। फिर

लोग तरेरी आँखों से गला फाड़-फाड़कर एक ही बात पूछेंगे- भाई साहब नेशन वान्ट टू नो कि आप बल्ब कब खरीदोगे! इससे पहले कि मामला ज्यादा बिगड़े फौरन जाकर बल्ब ही खरीद लूँ। इस तरह मैं हर दिन एक ही रामधुन बजा रहे एलईडी बेचने वाले साहब के पास प्रकट हुआ। ऐसा नहीं है कि मैं सीधे उसके पास पहुँचा था। वो तो कई दुकानों में नाक रगड़ने के बाद पता चला कि एक एलईडी बल्ब की कीमत 150-200 रुपये से एक पैसा कम नहीं है। कुछ के पास कीमत पूछने गया तो कुछ के पास खरीदने। लेकिन किसी न किसी बात में मुझमें और दुकानदार में कुछ कहा-सुनी हो जाती। कुछ दुकानदारों ने यहाँ तक कह दिया कि मेरी सूरत खरीदने वाली नहीं है। कुछ ने कहा – जाओ-जाओ साहब हमारा टाइम खोटी मत करो।

आखिरकार थक-हार के सौ रुपये में तीन एलईडी बल्ब बेचने वाले के पास पहुँचा। वह मुझे काफी देर से देख रहा था। उसने मुझसे पूछा – 'साहब कहीं सामने वाले दुकानदारों ने भगा तो नहीं दिया? कहीं भला-बुरा तो नहीं कहा। जो मेरे पास चले आए?' मैंने गुस्से में आँखें दिखाते हुए उससे कहा – ज्यादा होशियारी मत दिखाओ। अपने काम से काम रखो। बल्ब वाले ने कहा – हाँ साहब आजकल भलाई का जमाना ही कहाँ रहा? मैं लोगों को बड़े प्यार से बुलाता हूँ तो आते नहीं है। जब तक किसी की चार झिड़की न खा लें तब तक होश ठिकाने नहीं आते। मैं उसकी इस बात पर चुप रह गया। मैंने उसे सौ रुपये देते हुए कहा – ये बल्ब काम करेंगे भी न? या सिर्फ तुम यूँ ही हर दिन फेंकते रहते हो? वो क्या है न भाई चाइना (चीन) माल का कोई भरोसा नहीं है!

इतना सुनना था कि बल्ब वाले ने जो मेरी क्लास ली वो जिंदगी भर याद रह गया। न जाने कहाँ का गुस्सा था या फिर कुछ और, उसने सब का सब मुझ पर उगल दिया। उसने कहा- साहब चाइना का माल हमारे रगों

में समाया हुआ है! आपके नीचे से लेकर ऊपर तक और अंदर से लेकर बाहर तक सब चाइना ही चाइना है। लकड़ी, मिट्टी के खिलौने, पटाखे, दीपावली की चमक-दमक वाली लाइटें, राखियाँ सब ए टू जेड चाइना का है। फ्लिपकार्ट, स्नैपडील से ऑनलाइन सामान हो या फिर स्विगी, जोमाटो से भोजन – सब चाइना है। इलेक्ट्रिक दुनिया की तो बात ही मत पूछो। छोटे से छोटे चिप से लेकर मेमोरी कार्ड, पेन ड्राइव, हार्ड डिस्क, लैपटाप, कंप्यूटर तक सब चाइना का बना हुआ है। कहीं घूमना है तो मेक मै ट्रिप , कहीं ठहरना है तो ओयो के होटल, कहीं बैठना है तो प्लास्टिक की कुर्सियाँ सब चाइना नहीं तो और क्या है! साहब चाइना का माल बहुत खास होता है। अगर यह अच्छे से चल गया तो चाँद तक नहीं तो शाम तक! इसकी कोई गारंटी-वारंटी नहीं होती। वैसे भी एक ही चीज को लेकर कितने दिन तक घसीटेंगे? चलो चाइना माल के बहाने ही सही नए-नए सामान तो यूज़ कर सकते हैं! आप इन बल्बों को भूल जाइए। इसकी गारंटी मैं देता हूँ। इतने दिनों से यूँ ही ये बल्ब नहीं बेच रहा। मैं भी पीएच.डी होल्डर हूँ। वो तो देश ने मुझे नौकरी नहीं दी। वरना मैं बंदा बड़े काम का हूँ! शुक्र है कि चाइना का माल तो है। इसी से मेरे जैसे न जाने कितनों की रोजी रोटी चलती है!

मैं इतना सुन सिर झुकाए सौ रुपये के तीन बल्ब घर ले आया।

14. जब हो विधवा पेंशन, तो काहे का टेंशन

पोता अपनी दादी के पास बैठकर कहता है – 'दादी! कल ऑनलाइन क्लास में मुझे भाषण देना है। विषय है- 'भारत की महान महिलाएँ'।' अरे वाह! मेरा पोता भाषण देगा। यह तो बहुत अच्छी बात है। छुटपन में तुतलाने वाला मेरा पोता देखो तो कितना बड़ा हो गया। भगवान करे तुझे किसी की नजर न लगे। तू तो... 'दादी की बात बीच में ही काटते हुए पोता बोला – सुनो तो... वरना मैं भाषण भूल जाऊँगा। अब आप बीच में मुझे टोकिए मत। भाषण इस तरह है- हमारे देश में कोई जहर पीकर मीरा बन जाती है, तो कोई पत्थर बनकर अहिल्या। कोई अग्निपरीक्षा देकर पंचकन्या सीता, तो कोई हँसते-हँसते चिता पर लेटकर सती....'

दादी पोते की बातें सुन अपनी ही धुन में खो गई। उसे दो दिन बाद गाँव जो जाना है! हर महीने की चौबीस-पच्चीस तारीख के एक-दिन आगे पीछे वह अपने गाँव लौट आती है। खासकर इन तारीखों में गाँव जाने का एक गूढ़ रहस्य है। गाँव के लोग यह न समझे कि कहीं वह मर गई है। नहीं तो पेंशन आना बंद हो जाएगा। या फिर किसी चुगलखोर ने कहीं किसी अधिकारी से शिकायत कर दी तो पेंशन रुक जाएगा। फिर पेंशन पाने के लिए ऑफिस के कितने चक्कर लगाने पड़ते हैं, यह किसी से छिपा नहीं है। हर महीने की एक तारीख से तीन तारीख के भीतर पेंशन मिल जाता है। पेंशन मिलते ही अपने इकलौते बेटे के संग शहर आ जाती है।

जब तक दादी का पति जिंदा थो तो उसे किसी बात की कमी नहीं थी। बेटे-बहू का व्यवहार रूखा होने के कारण पति ने पहले ही उन्हें घर से अलग कर दिया था। वे दादी का पूरा ख्याल रखते थे। दुर्भाग्यवश पति चल बसा। दादी पर तो मानो बिजली टूट पड़ी। उसके पास बेटे और बहू के पास रहने के अलावा कोई चारा नहीं था। बहू और सास में छत्तीस का आंकड़ा था। छोटी-छोटी बातों पर बहू पहाड़ सिर पर उठा लेती थी। तिल का पहाड़ बना देती थी। सास चाहकर भी बेटे से बहू की शिकायत नहीं कर पाती थी। उसे लगता बेटा थका-हारा घर लौटकर आए तो उसे क्यों परेशान करूँ। सास घर का सारा काम करती थी। लेकिन बहू कभी पोते को हाथ लगाने नहीं देती थी। कहती – 'दादी ठीक से नहीं नहाती है। उनके पास से बास आती है। उनसे दूर ही रहा करो।'

दादी की पीड़ा शब्दों में बयान कर पाना कठिन है। वह तो पेंशन है जो किसी मरने वाले के लिए वेंटिलेटर का काम कर रहा है। वरना आज के जमाने में कोई कितना भी सगा-संबंधी क्यों न हो, कौन रखता है भाई? आदमी का बूढ़ा होना, ऊपर से विधवा होना और पेंशन न मिलना आज के समय का सबसे बड़ा अभिशाप है। जब अपने ही घर में खाने-पीने, उठने-बैठने, सुनने-बोलने, देखने-करने पर पाबंदी हो तो जीवन जीते जी नरक बन जाता है। कहने को तो घर में सभी लोग होते हैं, लेकिन कोई पास आकर बतियाता नहीं है। ऐसी अवस्था में जो सबसे बड़ी बीमारी पैदा होती है वह कैंसर, टी.बी., निमोनिया से भी घातक होती है। वह बीमारी है- अकेलापन! जी हाँ अकेलापन! यूँ तो किसी से दो पल बैठकर हँसना-बोलना दिल को अच्छा लगता है, उबाऊ व नीरसता दूर ही करता है, परंतु जब किसी कारणवश अनायास ही सामने वाले से मनमुटाव हो जाता है तो सिवाय तनाव-परेशानी के कुछ भी हासिल नहीं होता, बेवजह मन को

दुःख-तकलीफ ही पहुँचती है। यही हुआ दादी के साथ। वह हर दिन हर पल इन्हीं खयालों में डूबी रहती।

पोते को लगा दादी उसका भाषण नहीं सुन रही है। उसने जोर से कहा- लगता है आपने मेरा भाषण नहीं सुना। अबकी बार इधर-उधर मत खो जाना। लो फिर से सुनाता हूँ - हमारे देश में कोई जहर पीकर मीरा बन जाती है, तो कोई पत्थर बनकर अहिल्या। कोई अग्निपरीक्षा देकर पंचकन्या सीता, तो कोई हँसते-हँसते चिता पर लेटकर सती....'।

15. एक तिनका इक्यावन आँखें

मैं घर की छत पर हवा खाने के लिए मुंडेर पर खड़ा था। मंद-मंद हवा का आनंद ले रहा था। अचानक जोर की हवा चली और एक तिनका आँखों में आ गिरा। चूँकि मैं कवि हरिऔध तो हूँ नहीं कि आँखों में गिरने वाले तिनके पर आशुकविता लिख दूँ। वैसे भी मैं घमंडों में भरा ऐंठा हुआ नहीं था। न ही एक दिन मुंडेरे पर खड़ा था। वह तो मैं हर दिन मुंडेर पर चला आता हूँ। हाँ इतना अवश्य था कि अचानक ही सही, तिनका गिरा तो था मेरी आँख में। आँखे मींचते-मींचते नीचे उतरा। कमरे में पहुँचते ही पत्नी ने चुटकी लेते हुए कहा – 'क्या हुआ ले लिया मजा खुली हवा का?' मैं कुछ कहता इससे पहले ही फिर बोल उठी – 'अरे यह क्या हुआ? किस पर आँख उठा आए जो आपकी आँखें लाल हो गयी हैं?' मैंने पूरी घटना बता दी। पत्नी घटना पर विश्वास करने के बजाय तंज कसते हुए कहने लगी – 'ऐसी कौनसी आफत आन पड़ी जो छत पर चले गए। न जाने किसके लिए आँखें बिछाने जाते हैं? आप कितनी भी आँखें टेढ़ी कर लें मेरे सिवाय आपको आँखों में बिठाने वाला नहीं मिलेगा।'

पत्नी को समझाते हुए कहा - 'जिस दिन से मेरी आँखें तुमसे लड़कर चार हुई हैं, भला मैंने कभी किसी के बारे में सोचा है? तुम तो मेरी आँखों का प्यार हो। मेरी आँखों का तारा हो। तुम मुझ पर इतना आँख रखती हो कि मुझे कभी किसी चीज़ की कमी ही नहीं होती। भला मैं तुम्हारी आँखों में धूल डालने वाला काम क्यों करूँगा? जब से तुमसे शादी हुई तब से लेकर आज तक हमने एक-दूसरे पर कभी आँखें लाल नहीं की हैं। यही

होता है सच्चा प्यार। सच्चा प्यार करने वाले कभी एक-दूसरे की आँखों में नहीं खटकते। कभी एक-दूसरे पर आँखें नीली-पीली नहीं करते। वे एक-दूसरे की आँखों में बस जाते हैं। तुम तो मेरी आँखों का पानी हो। मेरी आँखों का चैन हो। तुम्हीं बताओं क्या मैंने कभी तुमसे आँखें चुराई हैं? तुम्हारे प्रति कभी आँखों में चर्बी आने दी है?... बात पूरी हुई थी कि नहीं पत्नी बीच में टपक पड़ी। वह बोली – मैं तुम्हारी आँखों के सभी इशारे समझती हूँ। अब रहने भी दो। बस भी करो। ठीक से मेरी आँखों में झाँककर बात करने की हिम्मत तो है नहीं और चले हैं आँख सेंकने। मैं सब जानती हूँ। चलिए डॉक्टर के पास चलते हैं और आपकी आँखों का इलाज कराते हैं।

डॉक्टर से मिलने निकले ही थे कि अचानक रास्ते में मेरा पड़ोसी मिल गया। वह मुझे आँखें फाड़-फाड़कर देख रहा था। वह थोड़ा कपटी किस्म का इंसान था। इसलिए उससे लाख आँखें फेरने की कोशिश की लेकिन उसकी आँखों में पड़ ही गया। रास्ता टोकते हुए उसने कहा- 'जब भी तुम्हें बुलाने की कोशिश करता हूँ आँखों से ओझल हो जाते हो। हमसे कोई गलती-वलती हो गयी क्या? हमें तो तुम अपनी आँखों का कांटा समझते हो। भाई, हम भी तुम्हारे शुभचिंतक हैं। भला हमें आँखों से दूर करने पर क्या मिलेगा? हम तुम्हारे लिए आँखें बिछाए रहते हैं और एक तुम हो कि हमसे आँखें चुराकर पतली गली नाप लेते हो। मैं तुम्हारी आँखों की किरकिरी थोडी न हूँ....।' पड़ोसी की बात बीच में ही काटते हुए बोला 'भला मेरी आँखें फूट गयी हैं जो तुम्हारी आँखों में खटकूँगा? वह तो उस दिन जरा जल्दी में था इसलिए नौ-दो ग्यारह हो गया। अब तुम्हीं बताओ क्या कभी मैने तुमसे आँखें चढ़ाकर बात की है? नहीं न!'

मुझे आँख में धूल झोंकने की कला नहीं आती है। इसलिए पड़ोसी से जैसे-तैसे छुटकारा पाया और पत्नी के साथ डॉक्टर के पास

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

पहुँचा। डॉक्टर के पास पहले से ही रोगियों की भीड़ थी। बैठने की जगह न होने के कारण खड़े-खड़े पैरों में दर्द होने लगा। आँखें भारी हो रही थीं। बहुत देर के बाद मेरी बारी आयी। इससे पहले की डॉक्टर मेरी आँखों का इलाज करते वह मुझे आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगे। अपने चश्मे को हिलाते-डुलाते मुझ पर बम फोड़ते हुए बोले- 'आप वहीं तो नहीं जो परसों एक लड़की की मरहम पट्टी करने के लिए आए थे?' उनका इतना कहना ही था कि पत्नी मेरी ओर आँखें लाल-पीली करती हुई घूरने लगी। वह शुक्र मनाइए कि तभी कंपाउंडर ने आकर मुझे बचा लिया। कंपाउंडर ने डॉक्टर को बताया कि यह वह नहीं कोई और हैं। डॉक्टर ने माफ़ी माँगी। पत्नी की आँखें खुल गयीं। काफी देर तक देखने के बाद डॉक्टर ने बताया कि मुझे आँख आ गयी है। उन्होंने कुछ दवाई लिखकर दी और हमें आँखों से ओझल किया।

घर लौटते समय मैंने पत्नी से कहा- 'अगर आज कंपाउंडर ने डॉक्टर की गलतफहमी दूर न की होती तो मैं तुम्हारी आँखों में जिंदगी भर खटकता रहता।' इस पर पत्नी ने मेरी आँखों में झाँकते हुए कहा- 'जहाँ सच्चा प्यार होता है वहाँ ऐसी छोटी-मोटी गलतफहमी मायने नहीं रखती। आप तो मेरी आँखों की रोशनी हैं। मेरी आँखों में जब भी झांकिए आप ही नजर आएँगे। मेरी फड़कती आँखों के शगून हैं।'

इतना सुनना था कि मेरी आँखें भर आयीं।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

16. किताबों की अंतिम यात्रा

फटी, पुरानी, रद्दी अब यही मेरे नाम रह गए हैं। किसी लेखक के पुस्तक विमोचन स्थल से जब मैं पहली बार इस लेखक के घर पर आयी थी, उनका मेरा प्रति स्नेह छिपाये नहीं छिपता था। कभी वे मुझे अपनी अंगुलियों से सहलाते तो कभी थूक की नरमी से मेरे पन्ने पलटते। अब वह बात नहीं रही। घर में प्रवेश करने के कुछ दिन तक मैं उनके हॉल की शोभा बनी रही। चूँकि हॉल में रखी शीशे की अलमारी में जगह सीमित थी, सो वहाँ मुझे अधिक दिन तक रहने का सुख नहीं मिला। जल्द मुझे वहाँ से घसीट बाहर किया गया। कुछ दिन तक घर की अलग-अलग मेजों पर मैंने अपना आसन जमाया। कहते हैं जब जिंदगी घुमक्कड़ बन जाती है तब अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए किसी न किसी तरह मौजूदगी दर्ज करानी पड़ती है। मैं आकार में थोड़ी मोटी थी। मेरा जिल्द रूपी लिबास मजबूत होने के कारण मैं बहुत सारे काम कर लेती थी। मसलन लेखक या उनकी पत्नी, बच्चे चाय, कॉफी या दूध का कप मेरी पीठ पर रख देते थे। इससे मेरे बदन पर गोल-गोल निशान पड़ जाते थे। मैं पढ़ने में उपयोगी थी या नहीं यह तो लेखक ही बता सकते थे, लेकिन मैं मच्छर, झिंगूर, कीड़े-मकौड़े मारने के एकदम योग्य थी। मेरे अंग-अंग पर उन कीटों के खून के निशान चीख-चीखकर गवाही देते थे। कई बार रद्दी खरीदने वाले के हाथों लेखक की पत्नी मुझे बेचने की कोशिश करती थी। वो तो लेखक थे, जो मुझे एक से दो बार उलट-पुलटकर देखते और फिर से स्टोर रूम में रख देते थे।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

यह दीन गाथा केवल मुझ जैसी एक किताब का नहीं स्टोर रूप में पड़ी कई किताबों का था। अक्सर हम सब मिलकर आपस में बात भी करते थे। हम अपने इस दुर्भाग्य पर रोते कि हमें हॉल में रखी शीशे वाली अलमारी में जगह क्यों नहीं मिलती। इसका भी एक दिन पर्दाफाश हो गया। स्टोर रूम में पड़ी एक दुबली-पतली, जिसकी जिल्द फट चुकी थी और अपने जीवन की अंतिम सांसे गिन रही थी, ने बताया – "एक दिन हॉल में मेरे सामने ही लेखक किसी से बात कर रहे थे। सामने वाले ने जब लेखक से पूछा कि आप इतनी सारी पुस्तकें उठा लाते हैं, उन्हें रखते कहाँ है? आपकी विद्वत्ता को भला यह अलमारी क्या संभाल पाएगी?" तो लेखक मुस्कुराते हुए प्रत्युत्तर में कहते हैं – "आप ठीक कहते हैं। अब देखिए न जहाँ कहीं भी चला जाता हूँ कोई न कोई मुझे पुस्तक थमा देता है। कोई समीक्षा लिखने के बहाने थमा देता है तो कोई सैंपल के रूप में। अब मैं आपको क्या बताऊँ किसी को न नहीं कह सकता। इसलिए सबकी किताबें उठा लाता हूँ। घर लाने पर श्रीमती जी की डाँट अलग से खानी पड़ती है। इन किताबों के चलते यह घर, घर नहीं रद्दीखाने सा लगने लगा है। चूँकि सभी किताबें अलमारी में रखी नहीं जा सकती, इसके लिए मैंने बीच का रास्ता अपनाया है। अलमारी में उपयोगी शब्दकोश और मेरी लिखी किताबों के अतिरिक्त शेष सभी किताबों को स्टोर रूम में रख दिया है (फेंक दिया है)। जब आवश्यकता पड़ती है तब ढूँढ़कर निकाल लेता हूँ।" इतना सुनना था कि स्टोर रूम मे पड़ी हम सभी किताबों का घमंड चकनाचूर हो गया। हम इस भुलावे में थे कि लेखक हमसे प्यार करते हैं। वह तो अब जाकर पता चला कि वे हमें मजबूरी में ढो रहे थे।

एक दिन हमारे बीच लेखक का फोन आ बैठा। हमने उससे पूछा कि कहीं तुम भी बेकार तो नहीं हो गए, तो इस पर उसने कहा- "मैं भला

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

बेकार कैसे हो सकता हूँ। लेखक तो मुझे अपनी पत्नी-बच्चों से भी अधिक प्रेम करते हैं। जितना समय मुझ पर बिताते हैं, उतना समय किसी को नहीं देते। वह तो लेखक की लड़की उनसे मजाक करने के लिए मुझे यहाँ छिपा रखा है। वरना तुम्हारी इतनी हैसियत कि मेरी बराबरी कर सको। एक बात और, आजकल वे सब कुछ पढ़ने लिखने का काम मुझी पर करते हैं। पहले कभी भूल से स्टोर रूप में तुम्हारी जरूरत समझकर क़दम रख देते थे, अब तुम्हारी खैर नहीं। अभी कुछ देर पहले ही उनकी रद्दीवाले से मुझ पर बात हुई थी। वह रास्ते में ही होगा। अब इस स्टोर रूम में तुम्हारा कोई काम नहीं है। आज से तुम सबकी छुट्टी।"

इतना सुनना था कि हमारा कलेजा बैठ गया। हमें रद्दीवाले से बहुत डर लगता था। वह हमारी नजर में किसी कसाई से से कम नहीं था। जिस तरह कसाई जीव का गला काटकर उसके अंग छिन्न-भिन्न कर देता है, ठीक उसी तरह रद्दीवाला हमें थोक के भाव में खरीदकर हमारी जिल्द और पन्नों के साथ उपर्युक्त व्यवहार करेगा। चूँकि अब यह हमारी अंतिम यात्रा है, तो हम भगवान से केवल इतनी प्रार्थना करते हैं कि हमें अगले जन्म में कुछ भी बना दे, लेकिन किताब हरगिज न बनाए।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

17. बधाई हो! नई बीमारी आयी है...

एक दिन कुछ स्वार्थी मनुष्यों के बहकावे में आकर आयुष के पाँचों बेटों- आयुर्वेद, योग, यूनानी, सिद्ध और होमियोपैथी में तीखी नोंक-झोंक हो जाती है। उनमें इस बात को लेकर बहस छिड़ जाती है कि कोरोना के लिए दवा सबसे पहले कौन बनाएगा। हर कोई मुँह मियाँ मिट्ठू बनकर अपना ही सुर अलाप रहा था। सब एक-दूसरे को नीचा दिखाने पर तुले थे। चूँकि कोरोना महामारी का समय है और दुनिया इससे त्रस्त है इसलिए वे इस अवसर को भुनाना चाहते हैं। वे दुनिया को यह दिखाना चाहते हैं कि उनके सिवाय इस महामारी का इलाज कोई नहीं कर सकता। सबसे पहले आयुर्वेद अपना दमखम दिखाते हुए कहता है- दुनिया भर में मेरी जितनी मांग है उतनी किसी की नहीं है। चारों ओर मेरा डंका बजता है। आज मेरे उत्पादों की दुनिया भर में माँग है। मेरे उत्पाद पंतजलि के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसके स्टॉल दुनिया भर में खुल गए हैं। मेरी सामग्री हाथों हाथ बिकती है। इतना कहना था कि योग बीच में कूद पड़ा। योग ने आयुर्वेद का गला पकड़ा और गुर्राते हुए बोला- चल-चल! ज्यादा भाव न खा। वह तो मेरे गुरु बाबा रामदेव की कृपा है। वरना तेरी इतनी हैसियत कहाँ? बाबा ने पतंजलि के उत्पाद बनाये तब जाकर तेरी माँग बढ़ी है। वैसे भी तुझे यह नहीं भूलना चाहिए कि बाबा जी से पहले तुझे पूछता ही कौन था। उदाहरण के लिए तुझ से पहले कोलगेट, पेप्सोडेंट, क्लोज़प के रासायनिक पदार्थ वाले टूथपेस्टों के प्रचार आया करते थे। बाबा जी ने बाजार में पतंजलि का टूथपेस्ट का क्या उतारा सब टूथपेस्टों की अक्ल ठिकाने पर आ गयी। सभी दौड़-दौड़ कर कहने लगे हमारे टूथपेस्ट में तुलसी, मुलेठी, आंवला, नीम, बबूल, लवंग, नमक, कोयला, फलाना यह, फलाना वह है। वैसे भी मैंने

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

दुनिया भर को इतने आसन दिये हैं कि उनमें से थोड़े भी अपना लें तो हर कोई निरोगी काया बन सकता है।

आयुर्वेद और योग की दलीले सुन यूनानी बीच में कूद पड़ा। यूनानी ने कहा- बस-बस! स्थानीय होने का लाभ न उठाओ! हाँ यह अलग बात है कि मैं यूनान से हूँ, लेकिन यह भूलकर भी मत समझना कि तुम सब से कम हूँ। मैं भी इलाज करने का हुनर अच्छी तरह से जानता हूँ। मेरे अनुभव के आगे सभी के अनुभव पानी भरते हैं। मैं तो यूँ कफ़, बलगम, पीला पित्त और काला पित्त देखकर यूँ मरीजों का इलाज कर सकता हूँ। मैं पार्थिव शरीर का इलाज पंच तत्वों के आधार पर करता हूँ। मैं अपनी औषधियों का व्यापार नहीं करता बल्कि लोगों को स्वस्थ व निरोगी बनाये रखने में विश्वास रखता हूँ। इतना सुनना था कि सिद्ध इन सबके बीच कूद पड़ा। उसने कहा- मैं तमिलनाडु का जन्मा पारंपरिक चिकित्सा पद्धति हूँ। मेरे आगे तुम लोगों की एक न चलने दूँगा। सिद्ध गुरुओं ने मुझे साक्षात् शिव-पार्वती से प्राप्त किया है। इस हिसाब से मैं तुम लोगों से सबसे प्राचीन और महान हूँ। मानव शरीर तो इस ब्रह्मांड का प्रतिरूप है। चूँकि ब्रह्मांड का ज्ञान मुझमें समाया है, इसलिए मैं ही सबसे अच्छी चिकित्सा कर सकता हूँ। तुम सबकी मेरे सामने कोई गिनती नहीं है। इतना कहना था कि तभी होमियोपैथी बीच में कूद पड़ा। उसने कहा - मुझे मेरे जन्मदाता सैमुएल हैनीमेन की सौगंध। मैं दुनिया में किसी भी बीमारी का इलाज करने की योग्यता रखता हूँ। तुम लोग मेरे बारे में नहीं जानते कि मैं बीमारियों को दबाता नहीं, बल्कि उसे जड़ से मिटा देता हूँ। इसलिए मुझे कम आंकने की भूल बिल्कुल भी न करना।

एलोपैथी इन सबकी नोंक-झोंक बड़ी देर से देख रहा था। उसने कहा- तुम सब क्यों बेकार में लड़ते हो? चाहे मैं हूँ या तुम सब, हम सबका

एक ही उद्देश्य है- मरीजों को ठीक करना। उनके और उनके परिवार वालों के चेहरे पर खुशी लौटाना। हम सब अपनी-अपनी जगह दुनिया से सारी बीमारियों को मिटाने में कोई कमी नहीं रखते। हम सब में इतनी शक्ति है कि हम किसी भी बीमारी का इलाज कर सकते हैं। दुर्भाग्यवश हम मनुष्य के लालच का इलाज नहीं कर सकते। कोरोना महामारी तो आज की आयी है। क्या इससे पहले बीमारियाँ नहीं थीं या फिर आगे न होंगीं? हाँ यह अलग बात है कि कोई बीमारी हल्की तो कोई भारी होती है। इंसान जब लालची बन जाता है तो सबसे पहले मानवता खो देता है। वह नई बीमारी आने पर दुखी होने के बजाए एक-दूसरे को बधाई देता है। इसे रुपये-पैसे कमाने का सुअवसर समझता है। लोगों को भयभीत कर अपने झांसे में फंसाने की चेष्टाएँ करता है। वह मरीजों पर चील-कौओं और गिद्धों की तरह टूट पड़ता है। इसके लिए वह हमें ढाल बनाकर लोगों के स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ करता है। जो व्यक्ति हमारा सही ज्ञान रखता है वह रोगियों की सेवा करना ही प्रथम धर्म मानता है। वह भली-भांति जानता है कि दुनिया की सारी चिकित्सा पद्धतियाँ मानव सेवा ही माधव सेवा है, के लक्ष्य से काम करती हैं।

18. गोरे रंग पे न इतना गुमान कर...

हमारे एक अविवाहित मित्र हैं। सुबह-शाम अपना चेहरा चमकाने में लगे रहते हैं। पता नहीं कहाँ से कोई फेयरनेस क्रीम उठा लाए कि हर घंटे चेहरे पर लीपा-पोती करते रहते हैं। फिर कुछ देर हवा में बैठते हैं। कभी सुखाते हैं और फुर्र से बाथरूम में घुस जाते हैं। वहाँ गुनगुने पानी से बार-बार चेहरा धोते हैं। बाहर आने के बाद टॉवेल लेकर रगड़-रगड़ कर चेहरा ऐसा पोंछते हैं मानो उनका चेहरा, चेहरा न हो कोई मर्सिडीज़ कार हो। यह इनका रोज का ड्रामा है। उनकी माँ उनसे कह-कह कर थक गयी। यह महाशय हैं कि अपनी हरकतों से बाज नहीं आ रहे हैं। एक दिन उनकी माँ ने मुझे समझाने के लिए कहा। मैं समझाने के लिए बैठा ही था कि मित्र ने टी.वीं. चला दिया। उस पर उसी फेयरनेस क्रीम का एड आ रहा था जिसे हमारे मित्र महोदय यूज़ करते हैं। एड में एक युवक अपनी काली चमड़ी को लेकर बड़ा परेशान था। वह लाख कोशिश करता लेकिन गोरा न हो सका। तभी हीरो की एंट्री होती है, वह उसे एक फेयरनेस क्रीम देता है। फिर क्या था, युवक अपने चेहरे पर फेयरनेस क्रीम लगाकर एकदम गोरा चिट्टा बन जाता है। मानो उसका चेहरा चेहरा न हो कोई दर्पण हो। एड की खास बात यह थी कि गोरा न होने पर पैसा लौटाने वाली स्क्रोलिंग बार-बार चलाई जा रही थी। इससे पहले कि मैं अपने मित्र को कुछ समझाता वह मेरा ज्ञान गुरु बन बैठा। मुझे भी फेयरनेस क्रीम खरीदने पर जोर देने लगा। अब मैं आपको क्या बताऊँ, बड़ी मुश्किल से अपनी जान छुड़ा पाया।

कदाचित् वृंद जी इस बात को भली भांति जानते थे। इसीलिए उन्होंने सैकड़ों साल पहले ही कह दिया था- रोपै बिरवा आक को आम कहाँ ते होइ। अरे भाई! जब हमारा डी.एन.ए. ही हमें गोरा देखना नहीं

चाहता है तो फिर फेयरनेस क्रीम किस खेत की मूली है। अगर सब ऐसे ही गोरे बन जाते तो अफ्रीका, वेस्टइंडीज़ में कोई भला काला क्यों होता? तेलुगु में एक कवि हुए हैं, जिनका नाम है- वेमना। वे गला फाड़-फाड़कर कह गए कि काली चमड़ी को जितना भी रगड़ो-धोओ, वह गोरी कभी नहीं हो सकती। अब आजकल के लोगों को कौन समझाए? आशावान होने की भी एक हद होती है। पता है कि प्रोब्लेम जड़ में है और एक हम हैं कि बस फूल, पत्ती ही नोंचे जा रहे हैं। वह तो शुक्र मनाइए कि अमेरिका में जॉर्ज फ़्लॉयड की मौत के बाद शुरू हुए 'ब्लैक लाइव्स मैटर' यानी कि काले लोगों की जिंदगी का भी महत्व होता है, मुहिम के दौरान हाल के हफ़्तों में गोरा-चिकना बनाने वाली कंपनियों को ऐसे उत्पाद बेचने के लिए कड़ी आलोचना का सामना करना पड़ रहा है, जिनसे रंगभेद को बढ़ावा मिलता है। आज रंगभेद की आग में फेयर एंड लवली जैसी दिग्गज कंपनी का फेयर शब्द जलकर राख हो रहा है।

दरअसल, पूरे विश्व में गोरेपन के प्रोडक्ट्स का बाजार अरबों-खरबों का है। आप अपनी त्वचा को साफ़ रख सकते हैं, अच्छे खान-पान से चमका सकते हैं, लेकिन उसका रंग नहीं बदल सकते। यह सच्चाई जानते हुए भी अधिकतर शादी वाले विज्ञापन वही घिसे-पिटे शब्दों में होते हैं, जैसे- लड़की गोरी, पतली, लंबी होनी चाहिए फलाँ-फलाँ आदि। हमें चेहरे के रंग बदलने वाले लाखों प्रॉडक्ट्स मिल जाते हैं। उससे रंग बदलता है या नहीं वह रामजाने! काश एक ऐसा भी प्रॉडक्ट मिल जाता जो कभी जाति के नाम पर तो कभी धर्म के नाम पर, कभी भाषा के नाम पर तो कभी प्रांत के नाम पर, कभी ऊँच के नाम पर तो कभी नीच के नाम पर, कभी मत के नाम पर तो कभी संप्रदाय के नाम पर, कभी फलाँ के नाम पर तो कभी ढंका के नाम पर रंग बदलने वाले गिरगिट की पहचान करा पाता, और एकता,

भाईचारा, प्रेम, शांति का स्थाई रंग दे पाता। कितना अच्छा होता कि हर कोई बयाँ अहसनुल्लाह खान के शब्दों को समझ पाता तो यह बहस ही न होती-

सीरत के हम ग़ुलाम हैं, सूरत हुई तो क्या।
सुर्ख़ ओ सफ़ेद मिट्टी की, मूरत हुई तो क्या।।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

19. भाषा की मौत

गाँव गाँव की संकरी पगडंडियों पर चलते हुए रामनाथ की आँखों में नमी थी। बुंदेलखंड के छोटे से गाँव 'देवपुरा' में जन्मा वह व्यक्ति, जो अब दिल्ली की भीड़-भाड़ में अपनी रोजी-रोटी कमा रहा था, हर साल होली पर गाँव लौटता था। इस बार जब वह आया, तो महसूस हुआ कि उसके बचपन की वह मिट्टी, जिसमें लोकगीतों की महक थी, अब बदल गई है। बचपन में जब वह अपनी दादी की गोद में बैठता था, तब वह उसे बुंदेली लोककथाएँ सुनाया करती थीं, जिनमें शब्द केवल अर्थ नहीं, बल्कि आत्मा हुआ करते थे। वह किस्से, जिनमें राजा-रानी, भूत-प्रेत, खेत-खलिहान और नदियों की बातें होती थीं, अब धीरे-धीरे धुंधली यादों में बदल रहे थे। गाँव के हर त्योहार और हर मंगलाचार बुंदेली भाषा के सुरों में गूँजते थे, लेकिन अब गाँव में बुंदेली बोलने वालों की संख्या घटती जा रही थी। बच्चे अंग्रेज़ी और हिंदी के शब्दों को गर्व से बोलते, और बुंदेली उनके लिए एक बीते समय की मज़ाक बन गई थी। यह बदलाव धीरे-धीरे नहीं, बल्कि अचानक आया था, जैसे किसी ने धरती से उसकी जड़ें उखाड़ दी हों।

रामनाथ जब गाँव की चाय की दुकान पर पहुँचा, तो उसने देखा कि वहाँ बैठकर बुजुर्ग अब अपने ठेठ बुंदेली मुहावरों में हँसी-मज़ाक नहीं कर रहे थे। रामू काका, जो कभी अपनी किस्सागोई के लिए मशहूर थे, अब मोबाइल पर कोई वीडियो देखकर हँस रहे थे। जब उसने गाँव के स्कूल में

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

मास्टरजी से पूछा कि क्या बच्चे बुंदेली पढ़ते हैं, तो उन्होंने हँसकर कहा, "भैया, अब जमाना बदल गया है। हिंदी और अंग्रेज़ी के बिना कुछ नहीं हो सकता।" यह सुनकर रामनाथ को गहरी पीड़ा हुई। उसे याद आया कि कैसे उसके दादा ने एक बार कहा था, "भाषा केवल शब्द नहीं होती, यह हमारी संस्कृति की धड़कन होती है। जब कोई भाषा मरती है, तो उसके साथ एक पूरी सभ्यता भी मर जाती है।" उसे यह भी एहसास हुआ कि शिक्षा व्यवस्था, रोज़गार के अवसर और समाज में भाषा को लेकर बनी हीनभावना इस बदलाव के बड़े कारण हैं। गाँव में बुंदेली का संरक्षण करने वाला कोई नहीं था, और न ही इसे बचाने के लिए कोई योजना बनाई गई थी। वह सोचने लगा कि क्या वह खुद कुछ कर सकता है? क्या वह गाँव के बच्चों को बुंदेली की महत्ता समझा सकता है? क्या वह गाँव में बुंदेली साहित्य और लोककथाओं को पुनर्जीवित कर सकता है? मन में उमड़ते इन विचारों के साथ, उसने तय किया कि वह हार नहीं मानेगा। वह गाँव में बुंदेली भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए कुछ न कुछ अवश्य करेगा, ताकि उसकी जड़ें यूँ ही न सूख जाएँ।

रामनाथ वर्षों बाद अपने गाँव लौटा तो उसे अपने बचपन की गलियाँ तो वैसी ही दिखीं, लेकिन उनके रंग-रूप में एक अजीब-सी नीरसता थी। जहाँ कभी चौपालों पर बुंदेली की मिठास घुली रहती थी, अब वहाँ बस चुप्पी थी या फिर फ़िल्मी गानों का शोर। गाँव के हर कोने में बदलाव की लहर चल रही थी, लेकिन यह बदलाव उसकी आत्मा को कहीं भीतर तक चुभ गया। जब वह अपने बचपन के मित्र गोपाल से मिला, तो बातचीत में पता चला कि अब गाँव के शादी-ब्याह भी पहले जैसे नहीं रहे। जहाँ पहले घरों से बुंदेली के लोकगीतों की स्वर लहरियाँ उठती थीं, अब वहाँ रिकॉर्डेड फिल्मी गानों की धुनें सुनाई देती थीं। यह बात सिर्फ़

गीतों तक सीमित नहीं थी—यहाँ तक कि पंडित भी अब संस्कृत की जगह हिंदी में मंत्र पढ़ने लगे थे, ताकि किसी को उच्चारण में कठिनाई न हो और अर्थ समझने में दिक्कत न आए। यह सब सुनकर रामनाथ के मन में एक टीस उठी। क्या सचमुच भाषा का मरना इतना आसान था? क्या हम सच में अपनी पहचान खोते जा रहे थे? उसने महसूस किया कि भाषा केवल संवाद का माध्यम नहीं होती, बल्कि यह हमारी संस्कृति, परंपराओं और इतिहास की संवाहक होती है। जब भाषा खो जाती है, तो उसके साथ बहुत कुछ चला जाता है—हमारी जड़ें, हमारी पहचान, हमारा सामूहिक स्मरण। यह विचार उसके मन में गहरे बैठ गया कि यदि इस बदलाव को रोका नहीं गया, तो अगली पीढ़ी शायद अपनी ही मातृभाषा को पराई समझेगी। इस एहसास ने उसे झकझोर दिया, और उसने ठान लिया कि वह कुछ करेगा, कुछ ऐसा जिससे उसकी मिट्टी की भाषा ज़िंदा रह सके।

रामनाथ ने सबसे पहले गाँव के बुजुर्गों और बच्चों को इकट्ठा किया और चौपाल पर एक लोककथा सुनाने बैठ गया। शुरुआत में लोग हिचकिचाए, कुछ ने इसे समय की बर्बादी समझा, लेकिन धीरे-धीरे बच्चे उत्सुक होकर पास आने लगे। बुजुर्गों की आँखों में भी एक चमक लौट आई, मानो वे फिर से अपने बचपन की गलियों में लौट गए हों। रामू काका, जो कभी गाँव के सबसे बेहतरीन किस्सागो माने जाते थे, ने भी अपनी पुरानी कहानियाँ सुनानी शुरू कीं। यह देखकर गाँव के मास्टरजी को भी एहसास हुआ कि शिक्षा केवल किताबों तक सीमित नहीं होती, बल्कि लोककथाएँ और लोकगीत भी एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक ज्ञान और मूल्य पहुँचाने का सशक्त माध्यम हैं। धीरे-धीरे गाँव की औरतों ने भी दिलचस्पी लेनी शुरू की, और फिर वही महिलाएँ जो पहले फ़िल्मी गाने सुनती थीं, अपने पुराने पारंपरिक गीतों को गाने लगीं। गाँव का माहौल

धीरे-धीरे बदलने लगा, और रामनाथ ने इस बदलाव को और मज़बूती देने के लिए गाँव के स्कूल में बुंदेली भाषा की कक्षा शुरू करने की ठानी। उसने प्रशासन से अनुमति लेने के लिए कई प्रयास किए, दस्तावेज़ तैयार किए, अधिकारियों से मिला, और अपनी बात रखते हुए बताया कि मातृभाषा की शिक्षा केवल संवाद के लिए नहीं, बल्कि सांस्कृतिक विरासत को सहेजने के लिए भी आवश्यक है। प्रशासन को उसकी बात समझ में आई, और आखिरकार, स्कूल में बुंदेली भाषा की कक्षाएँ शुरू करने की अनुमति मिल गई। बच्चे, जो अब तक इसे केवल घरों तक सीमित मानते थे, अब इसे गर्व से सीखने लगे। शिक्षकों ने भी इस पहल में रुचि दिखाई और पाठ्यक्रम में बुंदेली लोककथाएँ, कहावतें और मुहावरे शामिल किए।

कुछ वर्षों बाद, जब रामनाथ दोबारा गाँव लौटा, तो उसे अपने प्रयासों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखने लगा। जिस गाँव में कभी मातृभाषा को लेकर उदासीनता थी, अब वहाँ बुंदेली की मिठास फिर से सुनाई देने लगी थी। चाय की दुकान पर बैठे लोग अब हिंदी या अंग्रेज़ी की जगह गर्व से बुंदेली में बातचीत कर रहे थे। गाँव के बच्चे, जो पहले केवल हिंदी या अंग्रेज़ी में ही संवाद करते थे, अब अपनी मातृभाषा में कहानियाँ सुनाने और सुनने लगे थे। विवाह समारोहों में फिर से पारंपरिक लोकगीतों की गूँज सुनाई देने लगी थी। गाँव के लोग इस बदलाव को आत्मसात कर चुके थे, और यह बदलाव केवल भाषा तक सीमित नहीं था—इसने पूरे समाज को एक नई चेतना दी थी। बुंदेली भाषा को पुनर्जीवित करने का यह प्रयास लोगों को अपनी जड़ों से जोड़ने में सफल रहा था। रामनाथ ने यह सब देखा तो उसकी आँखें भर आईं। उसने महसूस किया कि भाषा केवल शब्दों का संग्रह नहीं होती, बल्कि यह जीवन का एक तरीका होती है, जिसे जब तक कोई अपने दिल में बसाए रखे, तब तक वह कभी नहीं मरती। गाँव के लोगों

ने उसे धन्यवाद दिया, लेकिन उसने मुस्कुराकर कहा, "मैंने सिर्फ़ एक चिंगारी जलाई थी, आग तो तुम लोगों ने खुद फैलाई।" उस दिन उसे एहसास हुआ कि अगर कोई अपनी संस्कृति और भाषा को बचाने का संकल्प ले ले, तो वह इतिहास में अपनी पहचान खोने से बच सकता है। यही उसकी सबसे बड़ी जीत थी।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

20. वाह! पेट्रोल-डीज़ल बैंक ऑफ़ इंडिया...

हैलो नमस्कार जी, क्या यह पेट्रोल-डीज़ल बैंक ऑफ इंडिया की गांधीनगर शाखा है? – अभिनव ने बड़ी सौम्यता के साथ अपने एरिया के लोकल बैंक को फोन लगाया। दूसरे छोर से बैंक कर्मचारी ने उत्तर देते हुए कहा - जी हाँ। बताइए मैं आपकी किस तरह से सहायता कर सकता हूँ? अभिनव ने पूछा - क्या आप मेरी बात प्रबंधक जी से करवा सकते हैं? बैंक कर्मचारी बड़ी विनम्रता के साथ बोला - सर जी क्षमा चाहता हूँ। आज प्रबंधक जी से बात नहीं हो सकती। ऑडिट का काम चल रहा है, वे बड़े व्यस्त हैं। वैसे आप प्रबंधक जी से क्या बात करना चाहते हैं? इस पर अभिनव ने अपनी दुविधा बताते हुए कहा - दरअसल बात यह थी कि मैंने हाल ही में एक कार खरीदी है। मेरी शनी कहिए या मेरी साढ़े सती कि उसके अगले दिन से पेट्रोल-डीज़ल के दाम आसमान को छू रहे हैं। अब क्या बताऊँ कार निकालना दुश्वार हो गया है। घर पर पड़ी-पड़ी सड़ रही है। ऊपर से घरवालों की झिक-झिक अलग। कार है कि बिना डीज़ल पिये एक इंच हिलने का नाम नहीं ले रही है। इसीलिए मैं अपनी कार के लिए डीज़ल लोन लेना चाहता हूँ। इसका प्रॉसेस क्या होता है, यही सब पता लगाने के लिए प्रबंधक जी से बात करना चाहता हूँ। यह सब सुनकर बैंक कर्मचारी थोड़ा चिड़चिड़ाते हुए कहने लगा - बस इतनी-सी बात के लिए आप प्रबंधक जी से बात करना चाहते हैं? वह तो मैं ही बता सकता हूँ। कोरोना का समय चल रहा है इसलिए बैंक सीमित समय के लिए काम कर रहे हैं। जब तक आप बैंक आयेंगे, फॉर्म भरेंगे तब बहुत देर हो चुकी होगी। यहाँ

लोन लेने के लिए मारा-मारी चल रही है। आप एक काम कीजिए। हमारी वेबसाइट डबल्यू डबल्यू डबल्यू डॉट पी डी बी आई ऑनलाइन डॉट जी ओ वी डॉट इन से फार्म डाउनलोड कर लीजिए। उसे भर लीजिए। उसके साथ तीन साल के इनकम टैक्स रिटर्न, 6 माह की बैंक स्टेटमेंट, 2 पासपोर्ट साइज़ फोटोग्राफ्स, आधार कार्ड प्रुफ, ड्राइविंग लाइसेंस प्रुफ और सरकारी नौकरी करने वाले गारंटर को साथ ले आइए। यह सब काम आप जितना जल्द करेंगे आपको उतना लाभ होगा। देर करेंगे तो लोन के बारे में भूल जाइए।

अभिनव ने बैंक कर्मचारी को धन्यवाद कह फोन काट दिया। थोड़ी देर पहले फुले हुए गुब्बारे की तरह दिखने वाला अभिनव हवा निकलते ही सिकुड़े हुए गुब्बारे सा दिखने लगा। लोन का प्रॉसेस सुन उसका सिर चकरा गया। पत्नी ने अभिनव को समझाते हुए कहा- कोई बात नहीं जी। मेरी एक सहेली है। उसका पति गांधीनगर शाखा के प्रबंधक को अच्छी तरह से जानता-पहचानता है। दोनों में खूब जमती है। मैंने अपनी सहेली से बात कर ली है। उसने मुझे बताया कि लोन का काम हो जाएगा। सिर्फ आप बैंक का जो प्रॉसेस है उसे पूरा कर लीजिए। यह सब सुन अभिनव सुपरमैंन की तरह हवा में उड़ने लगा। उसने फटाफट बैंक का प्रॉसेस पूरा किया।

अगले दिन सुबह-सुबह बैंक खुलते ही जाकर अभिनव ने आसन जमाया। उसके साथ उसकी पत्नी, पत्नी की सहेली, सहेली का पति, गारंटर सभी थे। वैसे प्रबंधक जी उस दिन भी व्यस्त थे। लेकिन पहले से ही फिल्डिंग जमाकर रखने का लाभ यह हुआ कि अभिनव को कोई दिक्कत नहीं हुई। सभी लोग प्रबधंक जी के कमरे में ऐसे बैठे थे मानो जैसे खुद के घर में बैठे हों। ऊपर से चाय-पानी का मज़ा अलग से। लोन की बात शुरु

हुई। प्रबंधक ने अभिनव को समझाते हुए कहा- आप निश्चिंत रहिए आपका काम हो जाएगा। लेकिन आपके लोन प्रॉसेस में एक समस्या है। आपका लोन एमाउंट बहुत कम है। छोटे-छोटे लोन में झिक-झिक अधिक होती है। लोन कब तक पास होगा कुछ कह नहीं सकते। मुझसे जो ऊपर के अधिकारी हैं उन्हीं के हाथों में सब कुछ होता है। तब तक आपको साइकिल चलाकर गुजारा करना होगा। अगर मंजूर है तो कहिए लोन प्रॉसेस अभी शुरु कर देता हूँ। हाँ, यदि आप लोन जल्दी चाहते हैं तो मैं आपको एक सुझाव दे सकता हूँ। आप यह लोन निजी तौर पर न लेकर अपनी कंपनी की ओर से लें। और लोन अमाउंट में शून्यों की संख्या बढ़ा दें। इससे आपको बहुत सारे फायदे होंगे। ऐसे लोन जल्दी पास कर दिए जाते हैं। बड़े लोनों में बड़े बाबुओं की बड़ी दिलचस्पी होती है। तब आप एक कार क्या अपनी कंपनी की सभी कार और अन्य गाड़ियाँ भी दौड़ा सकते हैं। खुदा न खास्ता मान लीजिए कल के दिन कुछ ऊँच-नीच हो गई तो अपने परिवार के साथ निकल जाइए फॉरेन ट्रिप पर। जब तक आप लौटेंगे तब तक सरकार आपका लोन माफ़ कर चुकी होगी। अब यह सुझाव आपको कैसा लगा मुझे और अधिक बताने की जरूरत नहीं है। आप तो खुद पढ़े-लिखें हैं। पेपर-वेपर पढ़ते ही होंगे। या फिर टी.वीं पर ही देखा होगा। बस आप मेरा थोडा सा हाथ गीला कर दीजिए।

अभिनव ने खुशी-खुशी तुरंत मिठाई का डिब्बा मंगवाया। साथ में एक खाली डिब्बा भी। अपने संग आए लोगों को तो मिठाई खिलाई लेकिन प्रबंधक जी के हाथ गीले करने के लिए खाली डिब्बे में ऐसा क्या रखकर दे दिया पता नहीं, प्रबंधक जी खुशी के मारे फूले नहीं समा रहे थे।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

21. दोगले इंसान से वायरस ही अच्छे हैं

हाथी मेरे साथी फिल्म का एक गाना आपने खूब सुना होगा। वह है - तू यारों का यार है कितना वफादार है / झूठा है सारा जहाँ सच्चा तेरा प्यार है / तू पगला न बदला तू पगला न बदला / सारी दुनिया गई है बदल चल / चल चल चल मेरे साथी ओ मेरे हाथी। मैं अच्छा गीतकार तो नहीं लेकिन नकल अच्छे से कर लेता हूँ। मैंने इसी गीत की पैरोडी बनाते हुए लिखा - तू धरती का बोझ है कितना वजनदार है / छोटा है सारा जहाँ बड़ा तेरा आकार है / तू बेकार न काम का तू बेकार न काम का / सारी दुनिया मर रही है चल / मर मर मर मेरे हाथी ओ मेरे हाथी। आपको यह पैरोडी कुछ अटपटी लग रही होगी। अब आप ही सोचिए एक छोटी सी पैरोडी का अटपटा पन आपको बुरा लग रहा है तो केरल में एक जिंदा गर्भवती हथिनी का मार डालना कितना बुरा लगना चाहिए। मुझे क्षमा कीजिए केरल में हथिनी की नहीं मानवता की हत्या हुई है। दानवता का नंगा नाच हुआ है।

इंसान बहुत बड़ा ढोंगी है। ऊपर से कुछ अंदर से कुछ। हाथी को गणेश का रूप मानने वाले भारत में इतना जघन्य अपराध हमारी संस्कृति का घिनौना और कुत्सित रूप है। बॉलीवुड में केवल हाथी पर बहुत सारी फिल्में जैसे- हाथी मेरे साथी, सफेद हाथी, मैं और मेरा हाथी, दोस्त और पिछले वर्ष आयी जंगली बनायी गयी हैं। हमारे बड़े-बूढ़े हमेशा कहते हैं- बेटा रील लाइफ और रियल लाइफ में जमीन आसमान का अंतर होता है। इसीलिए फिल्म आरंभ होने के दौरान एक ढोंगी वाक्य लिखा होता है- इस

फिल्म में किसी भी जानवर को कष्ट नहीं पहुँचाया गया है। जबकि वास्तविक जीवन में यह तस्वीर कुछ और ही बयान करती है।
यह सच है कि हथिनी ने इंसान पर भरोसा कर के एक बहुत बड़ी गलती की, जिसका खामियाजा उसे अपनी जान देकर चुकाना पड़ा। इंसान शायद आज भरोसे के लायक ही नहीं है। परंतु मुझे आश्चर्य तो उस समय होता है जब मांसाहारी लोग भी उस हथिनी के लिए शोक करते हुए दिखाई देते हैं, जो एक हाथ से मांस खाते हैं और दूसरे हाथ से हथिनी की मौत वाली खबर ढूँढ़ने के लिए रिमोट पकड़े टी.वीं. के चैनल बदलते रहते हैं।

प्रश्न यहाँ एक हथिनी या अन्य किसी जानवर के मरने का नहीं है। प्रश्न यह है कि क्यों लोग अपने स्वार्थ के लिए इतना क्रूर होते जा रहे है? हथिनी गर्भवती थी। केरल के मल्लपुरम की सड़को पर भोजन की तलाश में निकली थी। उसे पटाखों से भरा अनानास खिला दिया गया। उसने मनुष्य पर भरोसा किया। खा लिया। वह नही जानती थी कि उसे पटाखा भरा अनानास खिलाया गया है। परिणामस्वरूप पटाखे मुँह में फटते हैं। मुँह जलने के कारण वह कुछ भी नही खा पा रही थी। गर्भ के दौरान भूख ज़्यादा लगती है। ऊपर से उसे अपने बच्चे का ख्याल भी रखना था। अब आगे क्या बताऊँ? दर्द की यह आपबीती लिखते हुए मेरी कलम काँप रही थी। घायल हथिनी पीड़ा के मारे इधर-उधर भटकती है। अपने मुँह की जलन मिटाने के लिए पानी ढूँढ़ती है। अंत में पानी में अपना मुंह देकर पीड़ा को शांत करने का प्रयास करती है। प्रयास निरर्थक होने पर अपना दम तोड़ देती है।

सच तो यह है कि भ्रूण की भूख मिटाने के लिए अनानास का खाना उतना ही सच है जितना अनानास के भीतर पटाखों का होना है। यहाँ अनानास कोई और नहीं इंसान है और पटाखे उसके अंदर का शैतान है। मुझे पूरा विश्वास है कि यह करतब ऐसे ही किसी इंसान ने उस हथिनी के

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

साथ किया होगा जो मीट फैक्ट्रियों की सच्चाई से अवगत हैं। वे यह जानते होंगे कि हर रोज न जाने कितनी गर्भवती गायों, भैंसों और छोटे बछड़ो को इन स्लॉटर हाउसों में गैर कानूनी तरीके से चोरी छिपे काट दिया जाता है। इसलिए हथिनी के मरने पर आश्चर्य करने की आवश्यकता नहीं है।

हाँ इतना जरूर है कि हथिनी ने जाते-जाते हमें एक बात सिखा गयी। वह यह कि जो लोग एक हाथ में फ़ोन से उसके लिए सांत्वना भरे संदेश टाइप करते हुए दूसरे हाथ से मांस का मजा लेना चाहते है, वो लोग वास्तव में सरासर दोगले हैं। दोगले इंसान से वायरस ही अच्छे हैं। ऐसे इंसानों पर कभी भरोसा नहीं करना चाहिए। अंत में –

मर रही हूँ मैं, अपने प्यारे भ्रूण के साथ,
आगे नहीं बढ़ाया किसी ने अपना हाथ।
जाने को तो जा रही हूँ, छोड़ तुम्हारा साथ।
अब न बढ़ाना फिर कभी धोखे भरे हाथ।।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

22. ऐ जाते हुए लम्हे कुछ तो सिखा जा

सर्द दिनों में सर्द की रातें और सर्द का दिन बदन को तार-तार कर देता है। इस सर्दी के मारे सूर्य मुँह छिपाए फिरता-रहता है। इसी में वह स्वयं को सुरक्षित महसूस करता है। चारों दिशाओं से सर्द हवाएँ शत्रु देश के हमले से कम नहीं होतीं। जहाँ देखो वहाँ कोहरा ही कोहरा। पता ही नहीं चलता कि इस दुनिया में हमारे सिवाय कोई है भी या नहीं। आजकल टूटते-बिखरते-धुँधलाते रिश्तों के बीच कोहरा हमारी वास्तविकता को आईना दिखाता है। चलिए, इसी बहाने हम से हमारा परिचय हो जाता है।

चारपाई पर लंबी ताने रजाई ओढ़कर सोने का सुख किसी स्वर्ग से कम नहीं है। कहते हैं सर्दियों में रंग-रंग के सपने आते हैं। लड़का है तो राजकुमारी और लड़की है तो उसके सपनों का राजकुमार उसे झट मिलने आ जाता है। सर्दियों में हर कोई एक-दूसरे को धोखा देने की ताक में खड़ा रहता है। हमारे पंचतत्व जैसे हवा अपनी गति भूलकर ठोस बन जाती है, आसमान के नाम पर चारों ओर एक घना परदा छाया रहता है। आग भी अपने स्वभाव को बचाने के लिए कोहरे से जद्दोजहद करती है। पानी का हाल तो पूछिए ही मत। वह अपने हाइड्रोजन और ऑक्सीजन के बीच सारे रासायनिक समीकरण भूलकर दल-बदलू राजनेताओं के समान मौसम के साथ समझौता कर उसी की तूती बोलने लगता है। जहाँ तक धरती की बात है तो भाई शुक्र मनाइए कि वह हमें रहने-ठहरने की जगह भर दे देती है, वरना रंग बदलने वाले गिरगिट जैसे इंसानों को यह सब भी कहाँ नसीब होता है।

अब तक आप समझ रहे हैं होंगे कि मैं कहाँ का सर्द पुराण खोल बैठा। सच तो यह है कि देश की सारी सच्चाई इसी सर्दी में छिपी हुई है। यह मौसम न केवल वर्षा और गर्मी का मिलन करवाता है बल्कि झूठ और सच के बीच में छिपे मिथ्या का भी पर्दाफाश करता है। वर्षा की बाढ़ और गर्मी के अकाल से बेहाल लोगों को 'अच्छे दिन' की आस संजोए रजाइयों में सोने का अवसर देता है। लेकिन इसी सर्द मौसम में छिपी हैं कई ऐसी बातें, जो हमें झकझोर कर रख देती हैं।

यह बात है उस बूढ़े बाबा की जो देश के हर कोने में नकारों की तरह दिखाई पड़ जाते हैं। यह वह बूढ़ा बाबा है जो अपने परिवार के द्वारा ठुकराया गया है। भीख माँगने के लिए उसे तमाशाई दुनिया में ठेल दिया गया है। जब तक गर्मी-बरसात थी तो जैसे-तैसे उसने खुद को बचा लिया। लेकिन यह सर्द मौसम उसकी जान पर आ पड़ा है। वह ठिठुरता, कराहता, बिलखता परमपिता ईश्वर से गुहार लगाता है- 'हे खुदा! मुझे इस सर्द मौसम से बचा ले।' कुछ दिन पहले उसका एक मात्र आशियाना पीपल का पेड़ विकास (यदि कोई न मरे तो उसे विकास कहा जाता है) के नाम पर सरकार द्वारा काट दिया गया। इससे देश का क्या विकास हुआ यह देश ही जाने, लेकिन उस बूढ़े बाबा का तो मानो सब कुछ उजड़ गया।

उस दिन से बूढ़े बाबा की लाठी दर-दर ठोकर खाने लगी। कहीं कोई ठिकाना नहीं मिला। अब तो सड़क के किनारे पेड़ अपने आपको लुप्त होते धरोहरों के रूप में देखने लगे हैं। अब तो उनकी जगह बड़े-बड़े कांक्रीट जंगल उग आए हैं। अंतर केवल इतना है पेड़ो वाले जंगलों से ऑक्सीजन मिलता है तो कांक्रीट वाले जंगलों से टूटते-बिखरते रिश्तों का धुआँ निकलता है। बूढ़े बाबा को पेड़ तो दूर अब छांव भी नसीब होना दूभर हो गया था। मैंने किताबों में पढ़ा था कि इंसान बिना पानी के नहीं जी सकता।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

लेकिन आज मुझे पता चला कि वह पानी के बिना कुछ दिन तो जी सकता है लेकिन आशियाने के बिना एक पल भी नहीं।

बूढ़े बाबा अब दुकानों के सामने भीख माँगने की कोशिश करने लगा। लेकिन दुकान वाले उसे कुत्ते की तरह दुत्कार देते थे। उसे दुकान के पास भीख माँगने से सख्त मना कर देते थे। आशियाना न होने के कारण अब भूख, प्यास और सर्दी उसके सिर पर तांडव करने लगी।

सर्द दिनों में सड़कों पर लोगों की आवाजाही कम होती है। इस कारण अब कोई बूढ़े बाबा पर ध्यान देने वाला नहीं था। अब उसका शरीर जवाब देने लगा था। कमजोरी के कारण आँखें मूँदती जा रही थीं। नसों की तरलता खिंचाव में बदलती जा रही थी। बदन में भूख की आग उसके शरीर की ठंडी को मिटाने में नाकाफ़ी था। अब उसे समझ में आ गया था कि उसका अंत चंद दिनों का मोहताज है। वह भगवान से प्रार्थना करने लगा- 'हे ऊपरवाले! अब मेरी ईहलीला समाप्त कर दे। मुझसे यह भूख, प्यास, सर्दी, बीमारी सही नहीं जाती।'

थोड़ी ही देर में वह जमीन पर ऐसा धराशायी हुआ जैसे किसी शिकारी के बाण से हिरण। दुकानवाले उसकी इस हालत को देखकर उसे अनदेखा कर दिया। इतना अनदेखापन तो जानवरों के साथ भी नहीं होता होगा। मानवता ह्रास हो रहा था।

सर्द मौसम में ग्राहकी कम होने के कारण दुकानदार दक्षिण भारत की यात्रा कर अब धीरे-धीरे लौटने लगे थे। साल का अंत होने वाला था। युवाओं में नए साल को लेकर बड़ा जोश था। इसी बीच चार युवा उस दुकान पर पहुँचे जहाँ पर यह बूढ़े बाबा लेटे थे। बड़ी मुश्किल से उन युवाओं की उम्र बीस-इक्कीस की होगी। नए साल मनाने को लेकर उनका जोश सातवें आसमान में था। बूढ़े बाबा को लगा कि शायद ये लोग उसे खाने-पीने को कुछ दें। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। उन युवाओं ने जमीन पर पड़े बूढ़े

बाबा को देखकर भी अनदेखा कर दिया। उन्होंने दुकानों से शराब की बोतलें, केक, बिरयानी और न जाने क्या-क्या खरीदा। खरीददारी कर अपनी कीमती बाइकों पर रफू चक्कर हो गए।

रात के समय उन युवाओं ने दोस्तों के साथ मिलकर पार्टी-शार्टी की। नशे में धुत्त बाईक चलाते हुए सड़क पर आते-जाते लोगों को हैपी न्यू ईयर कहते हुए चिल्ला रहे थे। नए साल का स्वागत करते हुए एक से बढ़कर एक संकल्प लेने लगे। कोई महीने में एक बार किसी गरीब को सहायता करने की बात कहता, तो कोई सिगरेट, दारू छोड़ने और मन लगाकर पढ़ने की।

अगली सुबह अपने संकल्पों को साकार रूप देने और किसी की सहायता करने के मकसद से वे लोग उस बूढ़ा बाबा के पास पहुँचे...

लेकिन मैं अब क्या लिखूँ? कलम की स्याहियत हमारी बर्बर मानवता से कहीं अच्छी है। उसे कम से कम इतना तो पता है कि उसे क्या लिखना है और क्या नहीं। सच तो यह है कि अब वह बूढ़ा पुराने साल के साथ-साथ इस संसार को भी अलविदा कह चुका था

चलिए भाई, यह तो राज-काज है। यह तो हर जगह होता ही रहता है। अभी तो हमें बहुत सारे जरूरी काम है। हमें चाय की चुस्की लेते हुए देश को बदलना है। बिना हाथ बढ़ाये देश की रूपरेखा बदलनी है। लंबी-लंबी हाँकना है। बाईकों पर सवार होकर आते-जाते लोगों को हैपी न्यू ईयर कहना है। अभी तो बहुत काम है....

अलविदा-अलविदा 2019.... और हैपी न्यू ईयर 2020....

23. एक ही उल्लू काफी था...

रात का सन्नाटा, चाँद की धुंधली रोशनी, और सायं-सायं करती हवाओं के बीच किसी रहस्यमय आवाज़ का गूँजना... यह किसी भयावह कथा का आरंभ हो सकता था, लेकिन यह कहानी एक ऐसे उल्लू की है, जिसने अपनी बुद्धिमानी और साहस से जंगल का भविष्य बदल दिया।

बहुत समय पहले, पंचगहना वन में एक विशाल वटवृक्ष के खोखल में एक उल्लू का जन्म हुआ। उसका नाम रखा गया 'नीरव'। जन्म से ही वह अन्य उल्लुओं से अलग था। उसकी चमकीली आँखें और तीक्ष्ण बुद्धि उसे विशेष बनाती थी।

नीरव का परिवार शिकार में माहिर था, लेकिन वह केवल शिकार के बजाय ज्ञान अर्जित करने में रुचि रखता था। वह जंगल के पुराने वृक्षों, नदियों, और चट्टानों की कहानियाँ सुनता, और हर चीज़ को गहराई से समझने की कोशिश करता।

एक दिन जंगल में अकाल पड़ा। जलस्रोत सूख रहे थे, और भोजन की कमी हो रही थी। जंगल के सारे पक्षी और जानवर चिंतित थे। नीरव ने यह देखा और उसने समाधान खोजने का निर्णय लिया। उसने जंगल के पुराने ग्रंथों को पढ़ा, जिन्हें गिलहरियों ने एक गुफा में छुपाकर रखा था। उन ग्रंथों में एक गुप्त जलस्रोत का उल्लेख था।

नीरव ने अपनी तेज़ बुद्धि और ज्ञान का उपयोग करके जंगलवासियों को संगठित किया और उन्हें जलस्रोत तक पहुँचाया। उसका यह कार्य जंगल में उसे सम्मान दिला गया। सभी ने उसे अपना मार्गदर्शक मान लिया।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

जहाँ एक तरफ़ नीरव की लोकप्रियता बढ़ रही थी, वहीं कुछ स्वार्थी प्राणी इससे ईर्ष्या करने लगे। लकड़बग्घा सम्राट 'कृष्णदंत' को यह पसंद नहीं आया कि एक उल्लू जंगल में इतना सम्मान पा रहा है। उसने नीरव को बदनाम करने की योजना बनाई।

कृष्णदंत ने अफ़वाह फैलाई कि नीरव केवल अपनी बुद्धिमानी दिखाने के लिए जंगल को गलत दिशा में ले जा रहा है और उसने जलस्रोत का उपयोग केवल अपने परिवार के लिए किया है।

इससे जंगल में हलचल मच गई। कई जानवर नीरव के खिलाफ़ हो गए। नीरव को यह समझ नहीं आया कि जिनकी भलाई के लिए उसने कार्य किया, वे ही अब उस पर संदेह क्यों कर रहे हैं।

नीरव ने कृष्णदंत की साज़िश का पर्दाफ़ाश करने का निर्णय लिया। उसने अपने मित्र लोमड़ी 'सौम्या' की मदद ली, जो जंगल की सबसे तेज़ चालाक प्राणी थी। सौम्या ने कृष्णदंत की योजनाओं का भंडाफोड़ करने के लिए एक तरकीब सोची।

वह लकड़बग्घों के गुप्त अड्डे में जाकर उनकी बातचीत सुनने लगी। जब उसे पूरी सच्चाई पता चल गई, तो उसने रात के समय जंगल की सभा बुलाई और सबको सबूत दिखाए।

सौम्या द्वारा जुटाए गए प्रमाणों ने जंगलवासियों को झकझोर दिया। कृष्णदंत को अपने कुटिल कार्यों के लिए दंडित किया गया और जंगल में फिर से नीरव को नेता मान लिया गया।

नीरव ने कभी भी प्रतिशोध नहीं लिया, बल्कि जंगल की भलाई के लिए कार्य करना जारी रखा। उसने जंगल के विकास के लिए नए नियम बनाए, ताकि कोई भी प्राणी अकाल या साज़िश का शिकार न हो।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

नीरव की कहानी जंगल में एक प्रेरणा बन गई। जो उल्लू केवल अंधेरे में देखने और रहस्यमय समझे जाते थे, वे अब ज्ञान और नेतृत्व के प्रतीक बन गए।

नीरव, एक युवा और समझदार शेर, हमेशा से ही जंगल में शांति और ज्ञान का प्रचारक रहा था। उसके पूर्वजों ने जंगल पर शक्ति और भय के सहारे राज किया था, लेकिन नीरव का दृष्टिकोण अलग था। वह जानता था कि केवल बल प्रयोग से कोई राजा महान नहीं बन सकता। उसे यह एहसास था कि सच्ची महानता में बुद्धिमत्ता, धैर्य और न्याय का समावेश होना चाहिए।

नीरव का बचपन अन्य शेरों की तरह ही बीता, लेकिन उसमें कुछ खास था। वह केवल शिकार करना ही नहीं, बल्कि अपने आसपास की दुनिया को समझने में भी रुचि रखता था। जब अन्य शावक आपस में खेलते या शिकार करना सीखते, तब नीरव पेड़ों के नीचे बैठकर बूढ़े हाथी सुकेतु से कहानियाँ सुना करता। सुकेतु ने उसे बताया कि जंगल में असली शक्ति केवल शारीरिक बल में नहीं, बल्कि ज्ञान और धैर्य में भी होती है।

नीरव ने पक्षियों को पड़ोसी जंगल में भेजा ताकि वे विक्राल की गतिविधियों पर नजर रख सकें। उसने हाथियों से जंगल की सीमाओं को मजबूत करने और गुप्त मार्गों को सुरक्षित करने के लिए कहा। बंदरों को संदेशवाहक बनाया गया ताकि वे विक्राल के सैनिकों के बीच भ्रम फैला सकें।

जब विक्राल की सेना जंगल में घुसने की कोशिश करने लगी, तब हाथियों ने उनके मार्ग अवरुद्ध कर दिए। बंदरों ने सैनिकों को गलत रास्तों पर भेज दिया, जिससे वे बिखर गए। इस बीच, नीरव ने विक्राल को शांतिपूर्ण वार्ता के लिए बुलाया।

विक्राल, जो अब तक केवल बल से समस्याएँ हल करने में विश्वास रखता था, नीरव के इस आमंत्रण से हैरान था। लेकिन उसके कई सैनिक अब तक जंगल की रणनीति से थक चुके थे और हताश हो गए थे। विक्राल को लगा कि यदि वह नीरव से वार्ता करता है तो शायद उसे एक नया मार्ग मिल सकता है।

जब वे आमने-सामने आए, तो नीरव ने कहा, "शक्ति आवश्यक है, लेकिन यदि हम बुद्धिमत्ता और धैर्य से काम लें तो कोई भी समस्या हल हो सकती है। युद्ध से केवल विनाश होगा, लेकिन यदि हम सहयोग करें तो दोनों जंगलों का विकास हो सकता है।"

विक्राल को यह बात समझ में आ गई। उसने महसूस किया कि एक सच्चा राजा केवल जीतने में नहीं, बल्कि अपने राज्य को सुरक्षित और समृद्ध बनाने में विश्वास रखता है। उसने नीरव के प्रस्ताव को स्वीकार किया और दोनों जंगलों के बीच मित्रता स्थापित हो गई।

नीरव के इस निर्णय ने उसे जंगल का पहला ज्ञानी राजा बना दिया। उसके शासनकाल में जंगल में शांति और समृद्धि आई। उसने अन्य जानवरों को भी शिक्षा दी कि वे केवल बल पर नहीं, बल्कि बुद्धिमत्ता और धैर्य पर भी विश्वास करें।

नीरव की यह कहानी सदियों तक जंगल के वृक्षों की फुसफुसाहट में जीवित रही। उसकी महानता के किस्से पीढ़ी दर पीढ़ी सुनाए जाते रहे। जंगल में आज भी जब हवा बहती है, तो ऐसा लगता है मानो पेड़-पौधे नीरव के बुद्धिमान शासन की गाथा सुना रहे हों। नीरव ने यह साबित कर दिया कि एक राजा की असली शक्ति उसकी सोच, धैर्य और समझदारी में होती है, न कि केवल उसकी शारीरिक ताकत में।

24. लालच का अंधकार

माँ गांव सूरजपुर की मिट्टी में सादगी की खुशबू थी। यहाँ के लोग मेहनतकश और सरल थे। वे ईमानदारी और परिश्रम को ही अपना धन मानते थे। खेतों में हरी-भरी फसलें लहराती थीं, तालाबों का पानी सूरज की किरणों से चमकता था, और सुबह की हवा में पक्षियों की चहचहाहट गूंजती थी। परंतु इसी गांव में एक ऐसा व्यक्ति था, जो इन सब खुशियों से परे केवल अपने लाभ और धन-संपत्ति में ही विश्वास करता था। उसका नाम था रामलाल।

रामलाल गांव का सबसे बड़ा साहूकार था। उसने व्यापार के नाम पर लोगों को कर्ज़ देना शुरू किया था, परंतु धीरे-धीरे यह धंधा बन गया। वह गरीब किसानों को ऊँचे ब्याज दरों पर पैसे देता और फिर उन्हें कर्ज़ के जाल में इस कदर फंसा लेता कि वे जीवन भर उससे उबर न पाते। गांव के बीचों-बीच बनी उसकी ऊँची हवेली उसकी समृद्धि का प्रतीक थी, परंतु उसकी आत्मा उससे भी ऊँची और कठोर थी।

गांव का ही एक मेहनती और ईमानदार किसान रघु भी रामलाल के इस जाल में फँस गया। रघु ने अपनी बेटी की शादी के लिए सौ रुपये उधार लिए थे, यह सोचकर कि अगली फसल अच्छी होगी तो वह कर्ज़ चुका देगा। परंतु प्रकृति भी कभी-कभी मनुष्य की परीक्षा लेती है। उस वर्ष बारिश कम हुई और उसकी फसल आधी ही उगी।

जब रघु साहूकार के पास गया और कुछ समय की मोहलत मांगी, तो रामलाल ने बेरहमी से इनकार कर दिया। उसने साफ शब्दों में कह दिया कि यदि समय पर कर्ज़ नहीं चुकाया गया, तो उसकी जमीन नीलाम कर दी जाएगी।

रघु के लिए यह किसी वज्रपात से कम नहीं था। वह खेत, जो उसकी पीढ़ियों की आजीविका का सहारा था, अब उसके हाथ से निकलने वाला था। उसने साहूकार के पैरों में गिरकर गिड़गिड़ाया, परंतु रामलाल के दिल में दया की कोई जगह नहीं थी। उसने रघु की जमीन औने-पौने दामों में हड़प ली।

रघु का परिवार सड़कों पर आ गया। उसकी पत्नी दुख और भूख के कारण बीमार पड़ गई और कुछ ही दिनों में इस दुनिया से चली गई। गांववालों के दिल में रामलाल के प्रति आक्रोश पनपने लगा, परंतु कोई उसके विरुद्ध आवाज़ उठाने की हिम्मत नहीं जुटा पाया।

अब रामलाल का लालच बढ़ता ही जा रहा था। नए-नए किसान उसके कर्ज़ में फँसते जा रहे थे। गांव में उसकी धाक बढ़ती जा रही थी, परंतु उसकी आत्मा और अधिक सूखी और कठोर होती जा रही थी। लोग भीतर ही भीतर कुढ़ते थे, परंतु किसी में भी साहस नहीं था कि उसके खिलाफ खड़े हों।

कुछ वर्षों बाद, रामलाल का इकलौता बेटा सुरेश शहर से लौटा। उसने अपने पिता की संपत्ति और धन को देखकर गर्व तो किया, पर जब उसने गांववालों की दयनीय स्थिति देखी, तो उसका हृदय द्रवित हो उठा।

"पिताजी, यह धन किस काम का, जब लोग हमें मन ही मन कोसते हैं?" सुरेश ने एक दिन अपने पिता से कहा। रामलाल ने हँसते हुए जवाब दिया, "बेटा, दुनिया में धन ही सबसे बड़ा सत्य है। जिसके पास धन है, वही सम्मानित है।"

परंतु सुरेश का मन इस तर्क से संतुष्ट नहीं हुआ। उसे महसूस हुआ कि उसके पिता ने धन के पीछे भागते-भागते लोगों का भरोसा खो दिया है।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

कुछ समय बाद गांव में एक महामारी फैल गई। गरीब किसानों के पास दवा-इलाज के पैसे नहीं थे। सुरेश ने पिता से कहा कि वे अपने धन का उपयोग लोगों की सहायता के लिए करें। पर रामलाल को यह विचार मूर्खता पूर्ण लगा। उसने स्पष्ट कह दिया कि उसका धन उसकी तिजोरी में रहेगा, न कि गरीबों की सेवा में जाएगा।

फिर एक दिन, विधि का विधान पलटा। खुद रामलाल ही बीमारी की चपेट में आ गया। जब उसने गांव के वैद्य को बुलाया तो लोगों ने उसे मना कर दिया। डॉक्टरों ने भी उसे इलाज देने से इनकार कर दिया।

अब उसकी आँखों के आगे अंधेरा छा गया। जिस धन को उसने अपनी ढाल समझा था, वह अब किसी काम का नहीं था। गांववालों की नफरत और अपने किए हुए अन्यायों की छाया ने उसे अकेला कर दिया। बीमारी बढ़ती गई, परंतु कोई भी उसकी सहायता को आगे नहीं आया। उसका अपना बेटा भी उसके व्यवहार से आहत होकर गांव छोड़ चुका था। अंततः, लालच के इस पुजारी ने अकेलेपन और तड़प में दम तोड़ दिया।

रामलाल के मरने के बाद, सुरेश ने उसके धन का उपयोग गांववालों की भलाई के लिए किया। उसने गरीब किसानों के लिए अस्पताल बनवाया, स्कूल की स्थापना की और लोगों के कर्ज़ माफ कर दिए। धीरे-धीरे गांववालों का दिल सुरेश के लिए पिघलने लगा, और गांव फिर से खुशहाल होने लगा।

यह कहानी हमें यही सिखाती है कि लालच केवल विनाश को ही जन्म देता है। धन की भूख इंसान को अंधा कर देती है, परंतु अंततः सत्य और मानवता की जीत होती है। जब तक मनुष्य अपने कर्मों में दया, न्याय और परोपकार को स्थान नहीं देता, तब तक उसका जीवन व्यर्थ ही रहेगा।

25. वोटरभाई, जरा देख के...

एक बहुत बड़ा व्यापारी हर दिन की तरह टहलने के लिए निकला था। टहलते-टहलते एक दुर्घटना हुई और उसी में उसकी मौत हो गई। चित्रगुप्त के आदेशानुसार नरकलोक के सिपाही व्यापारी की आत्मा अपने संग ले नरक की ओर चल पड़े। मार्ग में स्वर्गलोक के सिपाही उसी आत्मा के लिए नरकलोक के सिपाहियों से भिड़ पड़े। झगड़ा इतना बढ़ गया कि मामला यमराज के पास पहुंचा। यमराज ने दोनों पक्षों की बहस सुनी। वे भी धर्म संकट में पड़ गए। अंत में व्यापारी पर ही किसी एक लोक को चुनने का भार छोड़ दिया। इसके लिए व्यापारी को एक दिन नरक और दूसरे दिन स्वर्ग में रहने के उपरांत उसे जो लोक अच्छा लगेगा वहां पर आजीवन रहने की छूट दी।

यमराज के फैसले का पालन करते हुए नरकलोक के सिपाही व्यापारी को सबसे पहले नरकलोक ले गए। भीतर जाते ही उसे उसके पुराने मित्र मिल गए। आश्चर्य की बात तो यह थी कि नरकलोक एक दम भूलोक जैसा था। व्यापारी अपने मित्रों के साथ भूलोक पर जिस तरह से अय्याशी करता था ठीक उसी तरह का वैभव यहां उपलब्ध था। उसने अपने एक दिन रहने का पूरा-पूरा लुत्फ उठाया।

दूसरे दिन व्यापारी को स्वर्गलोक ले जाया गया। वहां पर भी उसके कुछ मित्र जो उससे पहले मरचुके थे, उपलब्ध थे। वहां के वातावरण में मनोरम शांत संगीत, दीप-दीप-नैवेद्य की सुगंध, पूजा-पाठ, भजन-कीर्तन आदि आध्यात्मिक क्रियाकलाप अपनी छाप छोड़ रहे थे। व्यापारी का पूरा दिन पूजा-पाठ में बीता।

दो दिन के बाद व्यापारी को यमराज के समक्ष प्रस्तुत किया गया। अब व्यापारी धर्म संकट में था। दोनों लोकों में उसके मित्र थे। अब वह करें तो क्या करें? अंततः उसने नरकलोक का चुनाव किया। उसे इस बात की अत्यंत प्रसन्नता थी कि भूलोक और नरकलोक में कोई अंतर नहीं है। भूलोक पर जैसा जीवन व्यतीत करता था उसी तरह का जीवनयहां व्यतीत करने का उसे सुअवसर मिला।

अगले दिन व्यापारी की इच्छा अनुसार उसे नरकलोक ले जाया गया। वहां का दृश्य देखकर उसकी आंखें फटी की फटी रह गई। उसने देखा कि नरक के प्रवेश द्वार पर फूहड़ नाला बह रहा था। कल तक जिन मित्रों ने उसे चमक-धमकदार कपड़ों में हंसते हुए स्वागत किया था आज वही गंदे-मलीन कपड़ों में रो-रोकर उसे जाने के लिए कह रहे थे। सिर पर बोझा ढोना, छोटी-सी गलती होने पर नरकलोक के सिपाहियों का पीटना यहां के लिए आम दृश्य लग रहा था। व्यापारी को लगा कि उसके साथ धोखा हुआ है। वह छाती पीट-पीट कर रोने लगा। वह चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा था, "अरे भगवान! यह क्या हुआ? मुझे स्वर्ग में रहने का सुअवसर मिला था, लेकिन मैं तो नरकलोक की झूठी तड़क-भड़क के चक्कर में फंस गया। अब मैं क्या करूं? हाय रे मेरी फूटी किस्मत!" उसने नरकलोक के सिपाहियों से पूछा, "यह तो सरासर मेरे साथ धोखा हुआ है। आपने जो नरक कल तक दिखाया था वह तो तडक-भड़कदार थी। सब सुविधाएँ थीं। जबकि आज एक दम विपरीत दृश्य है।" इसके उत्तर में नरकलोक के सिपाहियों ने कहा, "वह तो हम तुम्हें आकर्षित करने के लिए नरकलोक का प्रमोशन कर रहे थे। आजकल बिना प्रमोशन व कैम्पेनिंग के कोई किसी को नहीं चुनता। उसे तो झूठे-झूठे सपने दिखाकर फसाना पड़ता है। तुम उसी प्रमोशन की चकाचौंध में धोखा खा गए।"

मित्रों! वोट हमारा अधिकार है। किंतु वोट देते समय बाहरी तड़क-भड़क, असंभव वादा करनेवालों, रुपयों, वस्तुओं के लालच देनेवालों तथा मुंह में राम बगल में छुरी रखनेवालों को भूलकर भी वोट न दें। वरना हमारी भी हालत व्यापारी की तरह हो जाएगी। फिर हमें भी कहना होगा- " हाय रे मेरी फूटी किस्मत!"

26. ईमान का सौदा

ग्राम मंगरौल की पगडंडियों पर शाम की लाली बिखर रही थी। खेतों से लौटते बैल और उनके पीछे चलते किसान दिनभर की थकान अपने कंधों पर ढो रहे थे। इन्हीं में से एक था गोविंद, एक साधारण पर ईमानदार किसान। उसकी सख्त हथेलियों में मेहनत की रेखाएँ थीं और आँखों में संतोष का सागर। उसके पास केवल तीन बीघा जमीन थी, जो उसके जीवन का आधार थी। परंतु आज वह चिंतित था। साहूकार रामलाल का कर्ज चुकाने का दिन आ गया था, और उसकी जेब खाली थी। घर में पत्नी और दो छोटे बच्चे भूख से तड़प रहे थे, और गोविंद के पास न अनाज था, न पैसा।

गाँव के चौपाल पर रामलाल अकड़कर बैठा था। वह गाँव का सबसे धनी व्यक्ति था, जिसकी ऊँची हवेली और लंबे चौड़े खेत थे। गाँव के आधे किसान उसके कर्जदार थे, और वह अपनी शक्ति का भरपूर उपयोग करता था। जब गोविंद वहाँ पहुँचा, तो रामलाल ने उसे देख कर ठंडी हँसी हँसी।

"क्यों रे गोविंद! कर्जा चुकाने आया है या फिर कोई बहाना बना कर आया है?" उसकी आवाज में तिरस्कार था।

गोविंद ने हाथ जोड़कर कहा, "मालिक, इस बार फसल खराब हो गई। थोड़ा और समय दे दीजिए।"

रामलाल ने आँखें तरेरीं, "समय? और समय चाहिए? खेत गिरवी रख दे, फिर जो चाहे कर!"

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

गोविंद के माथे पर पसीना छलक आया। वह अपने पुरखों की जमीन कैसे छोड़ सकता था? उसने विनम्रता से कहा, "कोई और रास्ता निकालिए, मालिक।"

रामलाल ने अपनी मूँछों को ताव दिया और बोले, "एक काम कर, मेरे बेटे मोहन को शहर पढ़ने भेजना है। कोई भरोसेमंद आदमी चाहिए जो उसकी देखभाल करे। अगर तू उसके साथ चला जाए और वहाँ नौकरी करे, तो मैं तेरा कर्जा माफ कर दूँगा।"

गोविंद के मन में तूफान उठ खड़ा हुआ। क्या वह अपनी जमीन छोड़कर शहर जा सकता था? यह प्रस्ताव केवल उसके लिए नहीं, बल्कि पूरे गाँव के भविष्य के लिए एक चुनौती थी। वह जानता था कि अगर वह चला गया, तो गाँव के और लोग भी रामलाल के चंगुल में फँस जाएँगे। परंतु घर की दुर्दशा और भूखे बच्चों की आँखों ने उसके निर्णय को डगमगा दिया।

अगले ही दिन गोविंद शहर जाने के लिए तैयार हो गया। उसकी पत्नी रोते हुए बोली, "तुम्हारे बिना हमारा क्या होगा?"

गोविंद ने उसके सिर पर हाथ रखते हुए कहा, "ईमान का सौदा नहीं किया है, बस कुछ दिनों की मजबूरी है। लौट आऊँगा।" शहर में मोहन की पढ़ाई और आराम की सारी जिम्मेदारी गोविंद के कंधों पर थी। वह सुबह से रात तक सेवा करता, परंतु मन हमेशा गाँव में ही रहता। दिन गुजरते गए, लेकिन रामलाल ने कभी वादा निभाने की बात नहीं की।

एक दिन गाँव से खबर आई कि रामलाल ने उसकी जमीन हड़प ली। यह सुनते ही गोविंद का खून खौल उठा। उसने सोचा, "मैंने तो ईमानदारी का सौदा किया था, फिर यह अन्याय क्यों?" उसने मोहन को छोड़ने का निश्चय किया और गाँव लौट आया। गाँव में पहुँचते ही देखा कि

उसके खेत पर रामलाल का कब्जा हो चुका था। अब तो पानी सिर के ऊपर जा चुका था। उसने सीधा पंचायत में जाकर फरियाद की।

गाँव के बुजुर्गों की सभा बैठी। रामलाल को बुलाया गया। वह पहले तो टालमटोल करने लगा, परंतु जब गाँववालों ने दबाव बनाया, तो उसने कहा, "मैंने तो लिखित में खेत अपने नाम करवा लिए थे।" गोविंद का धैर्य टूट चुका था। उसने गुस्से में कहा, "मैंने अपनी ईमानदारी तुम्हें दी थी, मालिक, पर तुमने उसे ठग लिया। यह खेत मेरा था और मेरा ही रहेगा!"

सभा में खुसुर-फुसुर होने लगी। कई और किसानों ने अपनी कहानियाँ सुनाईं। यह पहली बार हुआ था कि गाँव ने एकता दिखाई।

गाँववालों के समर्थन से गोविंद ने अदालत का दरवाजा खटखटाया। मामला तूल पकड़ने लगा। रामलाल ने हरसंभव प्रयास किया कि गोविंद हार जाए, परंतु ईमान और सच्चाई की ताकत सबसे बड़ी होती है। महीनों की लड़ाई के बाद अदालत का निर्णय आया—रामलाल को गोविंद की जमीन लौटानी पड़ी।

गाँव में उत्सव मनाया गया। गोविंद ने आँसुओं के साथ अपनी मिट्टी को चूमा। उसने गाँववालों से कहा, "यह जीत सिर्फ मेरी नहीं, हम सबकी है। अगर हम सब मिलकर अन्याय के खिलाफ खड़े हों, तो कोई हमें हरा नहीं सकता।"

रामलाल का घमंड चूर-चूर हो चुका था। गाँव के लोग अब समझ चुके थे कि ईमान की कीमत सबसे बड़ी होती है, और उसका सौदा नहीं किया जा सकता।

27. हमारा देश बदल रहा है...

गाँव के पुराने पीपल के नीचे कुछ बुज़ुर्ग बैठे थे। सर्दियों की गुनगुनी धूप में सभी अपनी पुरानी यादों को ताज़ा कर रहे थे। रामलाल काका ने एक गहरी साँस लेते हुए कहा, "अब वो दिन नहीं रहे जब गाँव में एक भी पक्की सड़क नहीं थी, जब बिजली के दर्शन तक दुर्लभ थे, और जब स्कूल जाना भी किसी बड़े सपने से कम नहीं था।"

उनकी बात सुनकर युवा विजय मुस्कुराया और बोला, "काका, अब सब कुछ बदल रहा है। हमारे गाँव की सड़कों को देखिए, अब यहाँ पक्की सड़कें हैं, हर घर में बिजली है, और तो और, हमारे बच्चों के लिए एक आधुनिक स्कूल भी बन चुका है। यह सब सरकार की नई नीतियों और गाँव के लोगों की मेहनत का नतीजा है।"

गाँव की यह कहानी केवल एक गाँव की नहीं थी, बल्कि पूरे देश की थी। पिछले कुछ दशकों में देश ने बदलाव की राह पकड़ ली थी। डिजिटल इंडिया, मेक इन इंडिया, स्टार्टअप इंडिया जैसी योजनाओं ने युवाओं को एक नई दिशा दी थी।

राजू, जो कभी एक छोटे से गाँव में रहता था, बचपन में किताबों के लिए तरसता था। उसके पिता किसान थे और माँ गृहिणी। लेकिन राजू में कुछ कर दिखाने की ललक थी। जब प्रधानमंत्री ग्रामीण डिजिटल शिक्षा अभियान के तहत उनके गाँव में कंप्यूटर सेंटर खुला, तो वह पहला छात्र था जिसने वहाँ दाखिला लिया।

धीरे-धीरे उसने डिजिटल दुनिया को समझा और ऑनलाइन शिक्षा के माध्यम से सॉफ्टवेयर डेवलपर बन गया। आज वही राजू

अमेरिका की एक बड़ी कंपनी में काम कर रहा था और अपने गाँव में भी एक डिजिटल शिक्षा केंद्र खोल चुका था।

एक समय था जब गाँव की गलियाँ कीचड़ और गंदगी से भरी रहती थीं। लोग बीमारियों से ग्रसित रहते थे और खुले में शौच जाना एक आम बात थी। लेकिन जब स्वच्छ भारत अभियान शुरू हुआ, तो गाँव की महिलाओं ने खुद आगे आकर बदलाव की जिम्मेदारी ली।

सुमित्रा देवी, जो गाँव की मुखिया थीं, उन्होंने गाँव की महिलाओं को संगठित किया और घर-घर शौचालय बनवाने का बीड़ा उठाया। बच्चों को स्वच्छता के बारे में जागरूक किया और पूरे गाँव को एक उदाहरण बना दिया। आज उनके गाँव को पूरे जिले में सबसे स्वच्छ गाँव का पुरस्कार मिल चुका है।

रवि और उसकी पत्नी माया पहले शहरों में छोटे-मोटे काम कर गुज़ारा करते थे। लेकिन जब उन्होंने सरकार की 'स्टार्टअप इंडिया' योजना के बारे में सुना, तो उन्होंने गाँव लौटने का फैसला किया।

उन्होंने अपने खेत में जैविक खेती शुरू की और ऑनलाइन माध्यम से अपने उत्पादों को देशभर में बेचना शुरू किया। देखते ही देखते उनका छोटा सा बिजनेस एक बड़ी कंपनी बन गया। अब उनके गाँव में कई युवा जैविक खेती से जुड़ चुके हैं और आत्मनिर्भर बन रहे हैं।

एक समय था जब लोग सरकारी नौकरी को ही सफलता मानते थे। लेकिन अब युवा स्टार्टअप और उद्यमिता की ओर बढ़ रहे हैं। सोनाली, जो एक छोटे गाँव की लड़की थी, उसने अपने हुनर से ऑनलाइन फैशन ब्रांड खड़ा कर दिया। पहले जहाँ लड़कियों को आगे बढ़ने के लिए संघर्ष करना पड़ता था, अब वहीं सोनाली जैसी लड़कियाँ आत्मनिर्भर बन रही हैं और अन्य महिलाओं को भी प्रेरित कर रही हैं।

मोबाइल और इंटरनेट ने हर किसी की ज़िंदगी बदल दी है। पहले जहाँ गाँवों में बैंकों की कमी थी, अब डिजिटल भुगतान और ऑनलाइन बैंकिंग ने सब कुछ आसान कर दिया है। बुज़ुर्ग रामलाल काका, जो कभी बैंक की लंबी लाइनों से परेशान रहते थे, अब अपने मोबाइल से ही पैसे का लेन-देन कर लेते हैं।

देश बदल रहा है, यह सिर्फ़ एक नारा नहीं, बल्कि एक सच्चाई है। गाँव-गाँव तक विकास पहुँच रहा है, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार हो रहा है, महिलाएँ आत्मनिर्भर बन रही हैं और युवा अपनी सोच और मेहनत से नए-नए कीर्तिमान गढ़ रहे हैं। यह बदलाव केवल सरकार की नीतियों से नहीं आया, बल्कि हर नागरिक की सोच और मेहनत से आया है।

आज का भारत नए सपनों का भारत है, आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ता भारत है। सच में, देश बदल रहा है और हर किसी को इस बदलाव का हिस्सा बनना चाहिए।

28. वह बूढ़ा

गर्मी की तपिश से झुलसती धरती पर नंगे पाँव चलता वह बूढ़ा अपनी लाठी के सहारे किसी अज्ञात गंतव्य की ओर बढ़ रहा था। उसकी आँखों में एक अजीब-सी शून्यता थी, और माथे की झुर्रियों में जाने कितने संघर्षों की कहानियाँ दबी थीं। गाँव के बच्चे उसे "बापू" कहकर पुकारते थे, मगर उसका असली नाम अब किसी को याद न था। उसकी पूरी ज़िंदगी एक अंतहीन संघर्ष की तरह थी—कभी अपने परिवार के लिए, कभी गाँव के लोगों के लिए और कभी अपने अस्तित्व के लिए।

कभी यह बूढ़ा भी हंसता-गाता एक युवा हुआ करता था। मेहनती, ईमानदार, और अपने उसूलों पर अडिग। गाँव की गलियों में उसकी ईमानदारी की मिसालें दी जाती थीं। उसने अपनी जवानी दूसरों के लिए जी थी—गरीबों की मदद, खेतों में दिन-रात मेहनत, और गाँव की बेहतरी के लिए संघर्ष। लेकिन किस्मत को शायद उसके हँसते चेहरे से नफ़रत थी। एक रात, जब गाँव गहरी नींद में था, कुछ दबंगों ने उसके घर को आग लगा दी। पत्नी और मासूम बेटी की चीखें अब भी उसकी आत्मा को चीरती थीं। उस रात बापू ने सब कुछ खो दिया—परिवार, घर, और जीने की वजह।

वह दिन और आज का दिन, बापू की आँखों ने कभी चैन की नींद नहीं देखी। वह कई सालों तक इधर-उधर भटकता रहा, कभी एक गाँव तो कभी दूसरे गाँव, लेकिन कहीं भी सुकून न मिला। लोग उसे अपने घर में जगह तो देते, मगर उसकी टूटी आत्मा के घावों को भरना किसी के बस

में न था। न जाने कितनी रातें उसने भूखे पेट गुज़ारीं, न जाने कितनी बार अपमान सहा। जीवन के आखिरी पड़ाव पर आकर भी उसे अपनापन नहीं मिला।

कई साल पहले उसने अपने खेतों की ज़मीन स्कूल बनाने के लिए दान कर दी थी। मगर आज वही स्कूल वाले उसे पहचानने से इनकार कर रहे थे। गाँव के जिन लोगों के घर कभी उसने अपने खून-पसीने से बनाए थे, वे आज उसे अपने आँगन में बैठने तक नहीं देते थे। दुनिया की इस बेरुख़ी ने उसके मन को पत्थर बना दिया था, लेकिन वह बोलता कुछ नहीं। जब मन दुख से भर जाता, तो वह चुपचाप अपने पुराने घर के जले हुए खंडहर के पास जाकर बैठ जाता। वहाँ बैठकर उसे अपनी छोटी-सी बेटी की हँसी सुनाई देती, जो अब बस यादों में ही रह गई थी।

एक दिन गाँव में महामारी फैली। लोग त्राहिमाम कर उठे। बापू ने अपने पुराने अनुभवों का सहारा लेकर बीमारों की सेवा शुरू की। उसने अपने बचे-खुचे पैसे दवाइयों में लगा दिए। जिन लोगों ने कभी उसे ठुकरा दिया था, आज वे उसकी छाया के नीचे जीवन की भीख माँग रहे थे। लेकिन बापू ने सब कुछ भुलाकर, सबकी सेवा की। धीरे-धीरे गाँव फिर से पटरी पर आया, मगर बापू की सेहत गिरती चली गई।

गाँव का संकट टल गया, मगर बापू का संकट बढ़ गया। वह कमजोर हो चला था, उसकी खाँसी अब थमती ही नहीं थी। जिस गाँव के लिए उसने सब कुछ लुटा दिया, उसी गाँव में उसे अब कोई दो रोटी देने वाला भी न था। भूख से तड़पते हुए वह अपने उसी पुराने खंडहर में आकर लेट गया। उसकी साँसें धीमी हो रही थीं, आँखें आसमान को निहार रही

थीं, मानो किसी अदृश्य शक्ति से पूछ रही हों—"क्या मेरा अपराध यह था कि मैंने दूसरों के लिए जीने का सपना देखा?"

अगली सुबह गाँव के कुछ बच्चे खेलते-खेलते वहाँ पहुँचे, जहाँ बापू लेटा हुआ था। उन्होंने उसे जगाने की कोशिश की, मगर वह कभी न जागने वाली नींद में जा चुका था। उसकी निर्जीव आँखें खुली थीं, जैसे समाज की बेरुख़ी का गवाह बनकर दुनिया को एक आखिरी बार देख रही हों। गाँव के लोग जब पहुँचे, तो किसी को समझ नहीं आ रहा था कि क्या किया जाए। जिन लोगों ने उसे अनदेखा किया, आज उनकी आँखों में पश्चाताप था, मगर बापू को इसकी परवाह नहीं थी।

गाँव वालों ने बापू की अंत्येष्टि कर दी। लेकिन उस खंडहर के पास अक्सर उसकी परछाईं दिखती थी, जैसे वह अब भी अपने गाँव की रखवाली कर रहा हो। समय बीतता गया, गाँव में नए घर बन गए, नई पीढ़ियाँ आ गईं, मगर बापू की कहानी वहीं ठहरी रह गई। उसकी दी हुई ज़मीन पर बने स्कूल में बच्चे पढ़ते रहे, मगर बापू के बलिदान की कहानी को धीरे-धीरे धूल की परतें ढँकती चली गईं। वह एक ऐसा नाम बन गया, जिसे लोग समय के साथ भूल गए—एक ऐसी आत्मा, जिसने दूसरों के लिए जीते-जीते अपनी साँसें गँवा दीं।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

29. बंदूक का घाव

गाँव का नाम था—सुखपुर। मगर वहाँ सुख नाम की कोई चीज़ नहीं थी। एक भयावह सन्नाटा हर समय हवा में तैरता रहता था। यहाँ की गलियों में एक ऐसा अतीत दफ़्न था, जिसे कोई याद नहीं करना चाहता था। इस गाँव की मिट्टी में खून की गंध रच-बस गई थी, और इस सबके पीछे सिर्फ़ एक चीज़ थी—बंदूक।

रवि का बचपन भी इसी गाँव में बीता था। एक हँसता-खेलता बच्चा, जिसकी आँखों में बड़े सपने थे। उसके पिता, रामप्रसाद, गाँव के सबसे ईमानदार और नेकदिल आदमी थे। मगर उनकी यही अच्छाई उनके लिए काल बन गई। गाँव में एक बाहुबली नेता, रघुवीर सिंह, की तूती बोलती थी। जिसने भी उसके ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई, उसे मौत की नींद सुला दिया गया।

रवि के पिता भी उन्हीं में से एक थे। उन्होंने रघुवीर के अत्याचारों के ख़िलाफ़ पंचायत में आवाज़ उठाई, मगर उसकी सजा उन्हें अपने ही घर के आँगन में मिली। एक रात, जब पूरा गाँव नींद में डूबा हुआ था, तब रघुवीर के गुंडों ने उनके घर पर धावा बोल दिया। उनकी माँ की चीखें अभी भी रवि के कानों में गूँजती हैं, जब उनके पिता को उन्हीं के सामने गोली मार दी गई थी।

वह रात रवि की ज़िंदगी का सबसे बड़ा मोड़ थी। उस दिन उसके हाथों में किताबें होनी चाहिए थीं, मगर किस्मत ने उसे बंदूक थमा दी। बदले की आग में जलता रवि, गाँव छोड़कर शहर चला गया। वहाँ उसने अपराध की दुनिया में कदम रखा, और जल्द ही एक कुख्यात

गैंगस्टर बन गया। अब उसके हाथ में भी वही हथियार था, जिसने उसके पिता को उससे छीन लिया था।

हर बार जब वह किसी पर गोली चलाता, तो उसे अपने पिता की आँखों में देखी गई आखिरी चीख़ याद आती। मगर इस दुनिया में ज़िंदा रहने के लिए उसका बेरहम बनना ज़रूरी था।

समय बीतता गया। रवि अब शहर का बड़ा नाम बन चुका था। मगर उसकी आत्मा अब भी शांत नहीं थी। उसके पास सब कुछ था—पैसा, ताकत, रौब। मगर जिस चैन की तलाश में वह निकला था, वह कहीं नहीं था।

एक दिन उसे खबर मिली कि उसकी माँ बीमार है। वह बिना देर किए गाँव पहुँचा। घर के टूटे हुए दरवाज़े और सूने आँगन को देखकर उसकी आँखें भर आईं। उसकी माँ बिस्तर पर पड़ी थीं। उन्होंने अपने कमजोर हाथों से रवि का हाथ थामा और कहा, "बेटा, जिस बंदूक ने तेरा पिता छीना, तू भी उसी का गुलाम बन गया? क्या यही तेरा बदला है?" यह सुनते ही रवि की आँखों में आँसू छलक पड़े।

वि ने उसी रात अपनी बंदूक तोड़ दी। वह समझ चुका था कि बंदूकें सिर्फ़ ज़ख्म देती हैं, सुख नहीं। अगले दिन, गाँव की पंचायत में उसने सबके सामने अपने अपराधों की स्वीकारोक्ति की और आत्मसमर्पण कर दिया।

कई साल जेल में बिताने के बाद जब रवि बाहर आया, तो उसने गाँव में स्कूल खोलने का फैसला किया। उसने हथियार छोड़कर शिक्षा को अपना हथियार बना लिया। आज गाँव में फिर से खुशहाली लौट आई थी, और रवि के पिता का सपना पूरा हो रहा था। मगर उसके भीतर अब भी एक दर्द था—बंदूक ने उससे उसका बचपन, उसके सपने और उसका परिवार छीन लिया था।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

बंदूक कभी समाधान नहीं होती। वह सिर्फ़ मौत और दर्द देती है। एक घाव, जो कभी नहीं भरता।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

30. शराब है खराब...फिर भी लाजवाब

हमारी बिल्डिंग में कुल 24 परिवार रहते हैं। मोहन हमारी बिल्डिंग का चौकीदार है। वह चौकीदार कम और जासूस ज्यादा है। उसे सभी लोगों की पूरी खबर रहती है। मसलन कौन घर पर है, कौन बाहर है, कौन कब आएगा, कौन कब जाएगा। किसका किससे चक्कर है, कौन किसके संग भागा है या भागने वाला है....सब कुछ जानता है। इसीलिए हम उसे मोहन नहीं अंतर्यामी कहकर बुलाते हैं। जो भी हो उसी के कारण अनजान लोग इस बिल्डिंग में कदम रखने से पहले कई बार झिझकते-घबराते-डरते हैं। यदि भूल-चूक से कोई आ भी जाता है तो उसके प्रश्नों की बौछार से सामने वाला धराशायी हो जाता है। अब आप सोचते होंगे कि उसे हम काम से निकाल क्यों नहीं देते। कारण, वह हमारे घरों की औरतों और बच्चों का चहेता है। उसे काम से निकालना तो दूर उसके खिलाफ एक शब्द भी बोलना हमारे लिए भारी पड़ जाता है।

मोहन की एक ही बुरी लत है। वह है – शराब। शराब और मोहन का संबंध चोली-दामन जैसा है। जेब में पैसे हों तो बरबस उसके पैर मधुशाला की ओर चल पड़ते हैं। सगे-संबंधियों, पड़ोसियों, शादियों, शुभ-अशुभ कार्यों में यदि पीने को मिल जाए तो फिर कहना ही क्या! एक शाम वह मेरे कमरे के सामने से गुजर रहा था। मुझे देखकर उसने कहा, "लगता है साहब आज आप बड़े फुर्सत में हैं। भाभी जी नहीं हैं क्या? बच्चे भी नहीं दिखाई दे रहे हैं?" मैंने कहा, "अंतर्यामी जी! सभी घर पर हैं। भाभी जी रसोई में और बच्चे पढ़ाई कर रहे हैं। और बताओ तुम्हारा हाल-चाल कैसा है?" मोहन ने दुखी मन से कहा, "क्या बताऊँ साहब, आजकल तबीयत नासाज़ रहती। परसों चक्कर खाकर नीचे गिर गया था। डाक्टर ने जाँच-

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

पड़ताल के बाद कहा कि मेरा लीवर खराब हो रहा है। यदि और कुछ दिन शराब पीऊँगा तो अवश्य मर जाऊँगा। अब शराब तो दूर चाय-कॉफी पीने से भी मना कर दिया है।" मैंने यही सही अवसर जानकर पड़ोसी रामनाथ को बुला लिया। हम दोनों ने मिलकर अंतर्यामी की खूब क्लास ली। हमने उससे कहा, "शराब तुम्हारी कमजोरी है। तुम शराब के बिना नहीं जी सकते। शराब पीने से तुम्हें मजा तो जरूर आता होगा, लेकिन अधिक पीने से उल्टी भी हो जाती है। इससे पाचन व्यवस्था खराब हो जाती है। लीवर तो लीवर धीरे-धीरे करके शरीर के सारे अंग एक दिन जवाब दे देंगे। घुट-घुट के मरने से अच्छा है किसी अच्छी जगह पर अपना इलाज करवाओ।" प्रत्युत्तर में दुखी मन से मोहन ने कहा, "बात तो सही है, लेकिन मैं तो ठहरा गरीब आदमी। लीवर के इलाज में इतना सारा पैसा कहाँ से लाऊँगा?" इस पर हमने उसे ढांढस बंधाते हुए यह प्रण ले लिया कि यदि वह आगे से शराब को हाथ नहीं लगाएगा, तो कल से ही उसका इलाज करवायेंगे। इलाज का पूरा खर्चा भी हमीं उठाएँगे। इस पर मोहन ने हम दोनों को हाथ जोड़कर कृतज्ञ भाव से अभिवादन किया और चला गया। हमें लगा कि हमने कोई बड़ा काम कर दिया। एक शराबी को शराब की लत से छुटकारा दिला दिया। यही सब कुछ सोचकर एक-दूसरे की पीठ थपथपाने वाले ही थे कि मोहन फिर लौट आया। उसने करुण स्वर में कहा, "साहब आप जैसा कहेंगे मैं वैसा करूँगा। कल से आप लोग मेरा इलाज आरंभ कर देंगे। आज मेरी शराब की आजादी का आखिरी दिन है। शराब के बिना मेरा गला सूखा जा रहा है। हाथ-पैर सुन्न पड़ते जा रहे हैं। मैं आप लोगों से हाथ जोड़ता हूँ। मुझे शराब पीने के लिए दो सौ रुपये दीजिए। फिर कभी जीवन में शराब को हाथ नहीं लगाऊँगा।" हमने उसे डरा-धमकाकर किसी तरह भेजने की लाख कोशिश की, लेकिन वह माना नहीं। आखिरकार हमने थक-हारकर उसे दो सौ रुपये दे ही दिए।

थोड़ी देर बाद मैंने यह सारी घटना अपनी श्रीमती को बताया। वह हँसकर कहने लगीं, "मोहन बहुत बड़ा बुद्धिजीवी है। वह पहुँचा हुआ राजनीतिज्ञ और अर्थशास्त्री जितना चतुर है। देश में आर्थिक संकट गहराने का कारण बेरोजगारी में वृद्धि है। आज जनता में खरीदने की क्षमता गिरती जा रही है। इस संकट से बाहर निकलने का एक मात्र उपाय रोजगार उपलब्ध कराना है। जनता की आय में वृद्धि करनी होगी। इसके लिए संपन्न लोगों से कर उगाही के मार्ग खोजने पड़ेंगे। सामान्य लोगों का मानना है कि ऐसा करने से देश की आर्थिक स्थिति सुधर सकती है। किंतु बुद्धिजीवी कहते हैं कि जितनी नौकरियाँ घटाई जायेंगी, जितना वेतन घटाया जायेगा, संपन्न लोगों को कर में जितनी कटौती दी जाएगी, सरकार जितना कम खर्च करेगी यह देश उतना विकास करेगा। बुद्धिजीवी भी जानते हैं कि सामान्य जनता की विचारधारा पर चलने से देश की आर्थिक स्थिति बदल सकती है। किंतु उनकी मजबूरी यह है कि वे सरकार को यह सब नहीं सुझा सकते। ऐसा करने पर सरकार की जेब ढीली हो जाएगी। सरकार कार्पोरेट कंपनियों की पिछलग्गु है। यह सभी जानते हैं कि शराब पीना सेहत के लिए हानिकारक है, फिर भी सरकार आए दिन शराब के लाइसेंस देती जा रही है। जब सरकार के आलाकमान की यह सोच है तो मोहन की क्या गलती है? उसकी सोच सरकार की सोच से कम थोड़ी न है!" पत्नी के मुँह से मोहन की प्रशंसा सुन रहा नहीं गया। मैंने तड़ाक से पूछ ही लिया कि यदि वह बुद्धिजीवी है तो हम क्या हैं? इस पर पत्नी मुस्कुराकर रसोई के भीतर जाते हुए कहा कि अभी आपके लिए चाय लाती हूँ।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

31. 'फॉरवर्ड' करने की फूहड़ संस्कृति

समय के बदलते तकनीकी तेवर से सोशल मीडिया पर कोई भी चीज चंद सेकेंडों में वायरल हो जाती है। वायरल सामग्री अच्छी हो तो कोई बात नहीं। यदि वायरल सामग्री अश्लील तथा फूहड़ हो तो यह हमारे लिए अत्यंत घातक सिद्ध होती है। सोशल मीडिया पर बढ़ती हुई आपत्तिजनक पोस्ट्स के कारण हमारी भारतीय परम्पराओं और मूल्यों का पतन हो रहा है। नाम व पैसा कमाने के चक्कर में आज की पीढ़ी अच्छे और बुरे के बीच अंतर करने की न्यूनतम सोच खो चुकी है। यह काफी महत्वपूर्ण हो गया है कि हमारे समाज व संस्कृति को दूषित करने वाले ऐसे प्लेटफॉर्म्स को बढ़ावा न दिया जाए। आज कल टिकटॉक, लैकी, इंस्टाग्राम, हेलो जैसे प्लैटफॉर्म्स पर नकली और बदली हुई सामग्री परोसी जा रही है।

आज एप स्टोर पर ऐसे कई सारे एप आ गए हैं, जो आसानी से श्रव्य-दृश्य सामग्री को संपादित करने का विकल्प देते हैं। इसके साथ-साथ फूहड़ अथवा द्वंद्वार्थी गीतों की लंबी फेहरिस्त भी देखने को मिलती है। अधिकतर इन सामग्रियों को बनाने वाले युवावर्ग ही होते हैं। अब प्रश्न उठता है कि इन सबका दोषी कौन है? दिखाने वाला या देखने वाला। बात घूम फिरकर वहीं आ जाती है कि मुर्गी पहले कि अंडा? वास्तव में देखा जाए तो हम सभी दोषी हैं! कारण, हम हर छोटी-सी-छोटी बात को फॉरवर्ड करने के लिए उसके सृजनात्मक पहलू को टटोलने के चक्कर में मार्फिंग (नकली) वीडियो और इमेज परोसने से नहीं चूकते। सभी को वायरल होने का भूत सवार है। इसलिए हम ऐसे वीडियो / संदेश सोशल मीडिया पर जारी करते रहते हैं! क्या ऐसा करने के लिए हमें दंडित नहीं करना चाहिए? कम से कम पश्चाताप करने की संभावना होनी चाहिए।

सामग्री में विविधता तथा स्वयं को दूसरों से अलग दिखाने के चक्कर में लोग जोखिम भरे स्टंट करते हैं। इसमें सफल होने की संभावना कम और हाथ-पैर तुड़वाने की संभावना अधिक होती है। आयु सीमा की परवाह किए बिना छोटे-छोटे बच्चे ऐसे-ऐसे कारनामे करते हैं कि दांतों तले उंगली दबा लेनी पड़ती है। इसे प्रोत्साहन देने वाले कई साहसिक धारावाहिकों के चैनल मोटी रकम भी कमा रहे हैं। सुबह उठने से लेकर रात के सोने तक और भीतर से लेकर बाहर तक के ऐसे-ऐसे दृश्य होते हैं जिन्हें देखने पर लाज आती है। अधिकांश वीडियो तथा चित्र इस तरह रोजमर्रा की गतविधियों को अनोखे ढंग से उजागर करने के प्रयास में रहते हैं। यही आगे चलकर समाज के उपहास का कारण बनते हैं।

अब ऐसे सामाजिक उपहास की हमारी सहनशीलता बढ़ रही है। बड़ी समस्या यह है कि हमारा मानना है कि यह एक मजाक है। मनुष्य का मस्तिष्क स्वयं को धोखा देने की क्षमता रखता है। यह इस नकली प्रवृत्ति की एक स्वीकार्यता है। हास्य की भी एक सीमा होती है। हास्य सहानुभूति/करुणा/साहचर्य की सीमाओं का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। किंतु नकलीपन में ऐसे मूल्यों का पतन होता जा रहा है। लोग आपसे कुछ इस तरह से व्यवहार करेंगे कि वह आपके सुख-दुख में भागीदार हैं, जबकि व्यवहार इसके विपरीत करते हैं। यह एक प्रकार की क्रूरता है जिसमें दूसरों के दुख से हमें सुख मिलता है।

दुर्भाग्य देखिए कि हम इस अंतर से अनभिज्ञ हैं। यह सबूत है कि हम सामाजिक रूप से दरकिनार होते जा रहे हैं। वे लोग जो सुबह गुड मॉर्निंग या सुप्रभात के साथ प्रेरक संदेश भेजते हैं, वे ही दुखी वीडियो को दोपहर में दूसरों के साथ साझा करते हैं। हममें से जो लोग मनोरंजन, व्यंग्य, विडंबना, हास्य, मज़ाक, गाली, और उपहास के बीच अंतर नहीं जानते हैं, वे एक दूसरे के दुख के प्रति सचेत नहीं रहते हैं। हमें इन स्थितियों को विशेष रूप से समझने की आवश्यकता है। कुछ बोलने या लिखने से पहले हमें यह कई बार सोचना चाहिए कि क्या इस रचना से किसी को पीड़ा हो

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

सकती है? क्या इसे साझा करने के परिणामस्वरूप किसी को चोट पहुँच सकती है? यदि हम इतना मात्र सोचकर अपने व्यवहार में परिवर्तन लाएँ तो अवश्य समाज आहत नहीं होगा। बिना सोचे-समझे कोई भी वीडियो, कोई भी चित्र समय-बेसमय दूसरों को भेज देते हैं। आजकल यह बिना सोचे-समझे फॉरवर्ड करने का कल्चर हमारे समाज में महामारी के रूप में फैल रहा है।

क्या यह महामारी हमेशा के लिए है? यह संक्रामक कैसे बना? इसका स्रोत कहां है? मेरी राय में, इसकी उत्पत्ति 'रोस्ट' संस्कृति में निहित है। रोस्ट का अर्थ है- जलना या जलाना। दूसरे शब्दों में इसका प्रयोग किसी और को फटकार के साथ जलाने के लिए किया जाता है। अमेरिका और यूरोप के 'स्टैंडअप कॉमेडी' से शुरू हुई ऐसी रोस्ट परंपरा का उद्देश्य राजनेताओं और मशहूर हस्तियों की चुटकी लेना था। जब सोशल मीडिया पर मजाक का विस्तार हुआ, तो ज्यादातर लोग इन 'चुटकियों' को नहीं समझ पाए। हमारे यहाँ चुटकियों के नाम पर हास्य की फूहड़ता परोसी गई। स्थिति यहाँ तक पहुँच गई कि चुटकी लेने के चक्कर में खराब गुणवत्ता वाले अथवा सार्वभौमिक तिरस्कार वाले वीडियो बनाए गए। चीन इस मामले में एक कदम आगे था। चूंकि दुनिया भर में अंग्रेजी अथवा अन्य भाषाओं में ऐसे वीडियो बनाना कठिन कार्य था, ऐसी स्थिति में चुटकियों का बाजारीकरण के उद्देश्य से चीन ने अपना दमखम लगा दिया। यही कारण है कि आज जितने भी फूहड़-अश्लीलता परोसने वाले एप हैं, वे अधिकतर चीनी बाजार की देन है। चीनी बाजार ने सोशल मीडिया के लिए ऐसे-ऐसे एप बनाए कि उसके लिए भाषा की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। इन एपों में इस्तेमाल की जाने वाली सामग्री मूल वस्तुओं की नकल भर होती है।

चीन ने बाजारीकरण के माध्यम से हमारे युवाओं को दिगभ्रमित किया है। दूसरों शब्दों में कहें तो शिकारी के जाल में शिकार खुद फँस गया

है! भारत में यह स्थिति दूसरे देशों की तुलना में अधिक सफल रहा। आज युवा पीढ़ी टिकटॉक, हेलो, लैकी, डबमैश एपों के नाम पर दिन के आठ-आठ घंटे इन पर विकृत वीडियो देखते रहते हैं। कुछ तो एक कदम आगे बढ़ गए। उन्होंने अपने दम पर खुद के वीडियो फिल्माना शुरू कर दिया है। उनके ऐसा करने से हमें दिक्कत नहीं है। दुख इस बात का है कि इसमें फूहड़ता-अश्लीलता, भड़काऊ भाषणों, आपत्तिजनक दृश्यों, जुगुप्सा, भीभत्स तथा कामुकता वाले पुट अधिक है, जिसे कई लोग बिना सोचे-समझे 'फॉरवर्ड' करते जा रहे हैं।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

32. जिंदगी का लॉकडाउन

सुबह से दिमाग खराब था। कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। लॉकडाउन के चलते न घर में रहे बनता था न ही बाहर। करूँ तो क्या करूँ?

मुझे कभी घर में इस तरह रहने की आदत न थी। वो तो कोरोना था, जिसने जीना हराम कर दिया था। एक तो बाजार बंद ऊपर से घर में एक ही तरह की जीवनशैली- वही उठो, नहाओ-धोओ, खाओ, टीवी देखो और सो जाओ। इसके सिवा कोई दूसरा काम भी था! उस दिन पहली बार लगा कि घर में रहना उतना आसान काम नहीं है। घर में एक-दो दिन रहना अच्छा लगता है, लेकिन इस तरह से कौन रहता है भाई? मैं यही सब उधेड़बुन में लगा था कि पड़ोस के मित्र ने आवाज़ लगाई। बाहर जाकर देखा तो मेरे घर से कुछ दूरी पर लोगों का जमावड़ा लगा हुआ था। मुझे भी जिज्ञासा हुई कि जाकर देखूँ आखिर हुआ क्या है। किंतु दूसरी ओर पत्नी की गंभीर हिदायतें घर से बाहर निकलने में खलल डाल रही थीं। जैसे-तैसे पत्नी को समझा-बुझाकर मुँह पर मास्क और हाथों में दस्ताने पहने घटनास्थल जा पहुँचा।

मैं जहाँ पहुँचा वह मकान मेरे करीबी मित्र का था। उसे उसने भाड़े पर चढ़ा रखा था। उस मकान में उत्तर प्रदेश, झारखंड, बिहार, राजस्थान के चार परिवार रहते थे। ये परिवार नौकरी की तलाश में अपना घर-बार छोड़कर यहाँ आए थे। तभी उन्हीं परिवारों में से एक मजदूर जो शरीर पर कपड़ों के नाम पर एक गंदी सी बनियान और एक मटमैला सा पैंट पहिने था, मेरे पास आकर खड़ा हो गया। उसकी आँखें मानो मुझसे कुछ पूछ रही थीं।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

दिमाग पर जोर डालने पर मुझे कुछ याद आया। लॉकडाउन के एक दिन पहले वह मुझसे मिलने मेरे घर पर आया था। वह मुझसे कुछ काम देने की चिरौरी कर रहा था। अब कुछ काम ही न हो तो उसे क्या दूँ! काफी सोचने-समझने के बाद मैंने उसे पाँच सौ रुपये दिए। उसने कृतज्ञता की दृष्टि से मेरी ओर देखा और झट से मेरे पैरों की ओर नीचे झुका। मैंने उसे थामते ऐसा करने से रोक दिया। मैंने कहा कि आगे कुछ काम होगा तो उस समय इन रुपयों का हिसाब-किताब देख लेंगे। वह मुझे धन्यवाद कहकर वहाँ से चला गया।

रंग, शक्ल, शारीरिक गठन तथा पेटी की मजबूरी ने उसे मजदूर बना रखा था। वैसे गाँव में उसकी कुछ जमीन थी। किंतु आए दिन अकाल और सूखा के कारण खेती करना असंभव हो गया था। पेट की मजबूरी इंसान जो न कराए वह कम है। उससे पूछने पर पता चला कि वह अपनी पत्नी और ढाई साल की बिटिया के साथ अपने गाँव जाने के लिए पैदल-पैदल जा रहे थे। कई किलोमीटर चलने के बाद बिटिया से रहा नहीं गया। उसने भूख, प्यास और थकान के चलते दम तोड़ दिया। यह कहते-कहते वह बिलख-बिलखकर रोने लगा। वहाँ जुटी भीड़ की आँखें गमगीन थीं। ऐसी हृदय विदारक घटना ने उन्हें झकझोर कर रख दिया था।

उस दिन पहली बार आभास हुआ कि जिंदगी में लॉकडाउन किसे कहते हैं। ऐसा लगा कि जिंदगी ने मुझे एक जोरदार तमाचा मारा है, गालों पर पड़े छापों ने कलम पकड़ने वाली उँगलियों तक को तोड़ डाला है। सच है, जिंदगी किसी के लिए वरदान है तो किसी के लिए अभिशाप।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

33. नोट के बदले वोट नहीं...

चुनाव नाम का एक शहर था, जहाँ लोग पहले बड़े प्रेम से रहते थे। वहाँ के बाशिंदे एक-दूसरे के सुख-दुख में साथ खड़े रहते, मोहल्लों में उत्सवों की रौनक होती, और गलियों में बच्चों की हंसी गूंजती थी। लेकिन कुछ ही दिनों में इस शांत और सौहार्द्रपूर्ण शहर की फिजा बदल गई। अचानक सड़कों पर बड़ी-बड़ी गाड़ियों का काफिला बढ़ने लगा, पोस्टरों और झंडों से गलियां पटने लगीं, और ऊंचे-ऊंचे मंचों से लाउडस्पीकर की गूंज शहर की शांति को चीरने लगी। चुनाव नज़दीक था, और नेता शहर में ऐसे उमड़ पड़े मानो यह कोई युद्ध का मैदान हो। लोग सहमने लगे। हर दिन नए-नए वादों की बारिश होती, लेकिन जनता को एहसास था कि यह बारिश केवल चुनाव तक सीमित रहेगी, फिर सबकुछ सूखा पड़ जाएगा।

चुनावी माहौल ने पुरानी दोस्तियों में भी दरार डाल दी। मोहल्लों में, दुकानों पर, यहां तक कि परिवारों के अंदर भी मतभेद पनपने लगे। कोई एक पार्टी के समर्थन में था, तो कोई दूसरी पार्टी के पक्ष में। पहले जहां लोग आपस में मिलकर चाय की चुस्कियों के साथ गप्पें लगाते थे, अब वहीं राजनीतिक बहसें गर्म होने लगीं। सोशल मीडिया के जरिए अफवाहों का दौर भी चल पड़ा। कोई कहता, "अगर हमारी पार्टी नहीं आई तो शहर का विकास ठप हो जाएगा।" तो दूसरा कहता, "इनके आने से शहर और भी पिछड़ जाएगा।" झूठे वादों और बेतुकी बातों ने लोगों को भ्रमित कर दिया।

शहर के पुराने बुजुर्ग चिंतित थे। वे याद करते थे कि कैसे कभी यह शहर भाईचारे की मिसाल हुआ करता था, लेकिन अब हर गली राजनीतिक रैलियों की रणभूमि बन गई थी। पोस्टरों से दीवारें दागदार थीं,

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

और हर नुक्कड़ पर नए-नए नारों की गूंज थी। लेकिन इन नारों में सच्चाई कितनी थी, यह कोई नहीं जानता था। लोग नेताओं की भीड़ को देखकर असमंजस में थे—ये वही लोग थे जो चुनाव के बाद कभी इस शहर की तरफ मुड़कर भी नहीं देखते थे।

चुनाव के दिन जैसे-जैसे करीब आ रहे थे, माहौल और भी गरमाने लगा। कभी कोई नेता किसी जाति की बात करता, तो कोई धर्म की दुहाई देता। शहर का माहौल भयावह हो चुका था। पहले लोग त्योहारों में पेंठ लगाते थे, अब रैलियों के कारण बाजार बंद होने लगे। बच्चों के स्कूल तक की छुट्टियां करवा दी गईं सबसे बुरा तब हुआ जब एक छोटी-सी बहस ने विकराल रूप ले लिया और शहर में दंगे भड़क उठे। जिन लोगों ने एक-दूसरे के साथ मिलकर सालों बिताए थे, वे अब एक-दूसरे के खिलाफ खड़े थे।

लेकिन चुनाव बीतते ही सब बदल गया। बड़े-बड़े वादों के साथ आए नेता अब शहर से गायब हो चुके थे। दीवारों पर लगे पोस्टर फटने लगे, रैलियों की चीख-चिल्लाहट की जगह फिर से शहर में पुरानी शांति लौट आई। पर इस बार लोगों के दिलों में दूरियां रह गईं चुनाव तो हर पांच साल में आता, लेकिन शहर 'चुनाव' के लोग इस बार एक ऐसी चोट खा चुके थे, जिसका असर शायद लंबे समय तक रहने वाला था।

पिछले कुछ दिनों से नेता छिप-छिपकर उनके घर आने-जाने लगे। नेता कब, कैसे और कहां से आ रहे हैं, यह कोई नहीं जानता था। जनता चौकस नेताओं के झूठे वायदों से बचने की कोशिश कर रही थी। लेकिन नेतागण इतने होशियार थे कि वो हर बार की तरह जनता को बेवकूफ बनाने की सभी कोशिशें करने पर अड़े थे। झूठे वायदों का सिलसिला रुका नहीं। जनता ने आखिर यह निर्णय लिया कि कुछ भी हो इस बार हम नेताओं के झूठे वायदों के चंगुल में नहीं फंसेंगे।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

उसी शहर में एक लड़की है, जिसे शिक्षा के नाम से जाना जाता था। वह अत्यंत बुद्धिमान लड़की थी। उसका मानना था कि जो भी व्यक्ति उसका साथ देगा वह उन्हें नेताओं के झूठे वायदों से निजात दिला सकती है। वह सभी लोगों के घर गई। उसने पाया कि नेताओं ने बड़ी चालाकी से झूठे-झूठे वायदे कर भोली-भाली जनता को अपने चंगुल में फँसा लिया था।

वह सोचने लगी कि जनता को कैसे समझा जाए। उसे एक उपाय सूझा। उसे पता चल गया था कि जनता बड़ी लालची है। वह नेताओं के झूठे वायदों में यूँ ही फँस जाती है।

ओह...तो नेतागण जनता के इसी लालच को भुनाने में लगे हैं। उसे अब यह पता लगाना था कि नेता-नेता कैसे वायदे कर रहे हैं।

वह मानती थी कि कुछ नेता बड़े धूर्त होते हैं। कुछ नेता अच्छे होते हैं। फिर धूर्त और अच्छे नेताओं को पहचाने कैसें? भोली-भाली जनता को बचाए कैसे? इसके लिए उसने जनता को कुछ उपाय बताए। उसने जनता को सिखाया कि अबकी बार नेता आपके घर आएँ तो उनसे क्या, कहाँ, कब, कैसे, कौन और कितना जैसे प्रश्न करे।

उसने जनता को बताया कि जो नेता आपको रहने के लिए बंगला, खाने के लिए फाई स्टार भोजन, पीने के लिए शराब, जरूरतों के लिए सोना-चाँदी, टी.वी., मिक्सी, कूकर बाँटते फिरेंगे, वे धूर्त नेता होंगे। इनकी बातों में आकर यदि उन्हें वोट दे दिया तो वे आपको आने वाले पाँच वर्षों तक जीते जी नरक के दर्शन करवा देंगे।

जब शिक्षा से यह पूछा गया कि वे किन्हें वोट दें तो इसके बदले में उसने उत्तर देते हुए कहा, हमें उन्हीं लोगों को वोट देना चाहिए जो हमें वोट के बदले नोट न देकर अगले पाँच वर्षों में शिक्षा, स्वास्थ्य, खेती-

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

बाड़ी, सुप्रशासन तथा आम लोगों के सुखद जीवन व्यापन के लिए हरसंभव प्रयास करेगी। यदि इसके बदले वे आपको दिन में रात के सपने दिखाते हैं तो समझ जाना चाहिए कि आने वाले दिनों में चुनाव शहर का बेड़ा गर्क हो जाएगा।

शिक्षा ने आगे कहा कि भोली-भाली जनता को जागरुक बनकर नेताओं से यह प्रश्न करें वे समाज की भलाई के लिए क्या कर सकते हैं, कब तक कर सकते हैं, कौन कर सकते हैं, कहाँ तक कर सकते हैं, कैसे कर सकते हैं, कितना कर सकते हैं और अंतिम प्रश्न पूछना अवश्य पूछना चाहिए कि वे यह सब क्यों नहीं कर सकते हैं।

शिक्षा बिटिया की बातें धीरे-धीरे समझ में आ रही थी। अब बारी आपकी है। क्या आप इस बार नोट के बदले वोट की जगह समाज हित के लिए वोट करने के लिए तैयार हैं?

34. जो नहीं है उसके लिए...

एक दिन की बात है। एक सेठ को रुपयों की आवश्यकता पड़ी। वह बैंक गया। वहाँ उसने 100 रुपये वाले 10 बंडल के हिसाब से एक लाख रुपये निकाले। रुपये थैली में रखकर उसे कंधे से लटका लिया और अपनी दुपहिया गाड़ी से अपने गंतव्य स्थल की ओर बढ़ने लगा। रास्ते में खड्ढे होने के कारण उसके थैले से सौ रुपये का एक बंडल गिर गया। उसे इस बात का कुछ पता चलता इससे पहले ही वह आगे बढ़ चुका था।

सौ रुपये वाला एक बंडल जहाँ गिरा वहीं से शुरू होती है हमारे देश की सोच। गिरे हुए नोट के बंडल में से एक नोट हवा में उड़कर कुछ दूरी पर जा गिरा। उसी रास्ते से जा रहे एक युवक वह नोट मिला। वह प्रसन्न हुआ। उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। तुरंत वह नोट लेकर पास के नुक्कड़ वाले चाय की दुकान पर पहुँचा। वहाँ उसने चाय, समोसा, बिस्कुट के नाम पर कुछ रुपये खर्च कर दिए। उसके बाद वह मंदिर गया। वहाँ उसने फुटकर बचे रुपयों में से 11 रुपये दानपेटी में चढ़ावे के रुप में चढ़ा दिया।

अब बची बात बंडल में बचे 99 नोटों की। अब आप सोच रहे होंगे कि उस बंडल का क्या हुआ होगा? उसी रास्ते से एक और आदमी जा रहा था। वह हमारे देश का ऐसा आदमी था जो भविष्य की चिंता में सूखा जा रहा था। जैसे ही उसे वह बंडल मिला वह फूला न समाया। इधर-उधर देखा और बंडल उठा लिया। कुछ दूरी पर जाकर वह बंडल के नोट गिनने लगा। गिनने पर नोटों की संख्या 99 निकली। फिर भी उसे स्वयं पर संदेह हुआ कि कहीं उसने गलत तो नहीं गिन दिया। उसने एक बार, दो

बार.....इसी तरह 10-12 गिनने के बाद वह आश्वस्त हो चुका था कि बंडल में एक नोट की कमी है।

असली खेल यहीं से शुरु होता है। थोड़ी देर पहले तक जो बड़ा प्रसन्न था अब वह बार-बार बैंक वालों को कोसने लगा। वह मन ही मन कहने लगा कि हमारे देश में भ्रष्टाचार कभी नहीं मिटेगा। बैंककर्मी बंडल ठीक से नहीं गिनते या जानबूझकर कम रुपयों के बंडल पैक कर देते हैं। देश के प्रधान से लेकर गाँव के पंच तक सभी भ्रष्ट हो चुके हैं। आज सरकारी व्यवस्था पर से लोगों का विश्वास उठ गया है। यहाँ कोई ठीक से काम नहीं करता। 100 तक की गिनती करना भी नहीं आता। विदेशों में हमारे देश की गरिमा मिट्टी में मिल जाएगी। यदि इसी तरह देश चलता रहा तो भगवान बचाए इस देश को। यहाँ किसी का कोई भला नहीं कर सकता।

इस घटना में तीन लोग हैं। एक सेठ, दूसरा वह आदमी जिसे 100 रुपये का एक नोट मिला था और तीसरा वह जिसे 100 रुपयों वाला एक ऐसा बंडल मिला जिसमें एक नोट कम था। वास्तव में वह सेठ सरकार का प्रतिनिधित्व करता है, पहला आदमी देश के गरीब तबके के लोगों का प्रतिनिधि है जबकि दूसरा आदमी देश में ऐसे लोगों का प्रतिनिधित्व करता है जो खुद तो कुछ नहीं करते किंतु दूसरों के कामों पर लांछन लगाते हैं।

सेठ के थैले में से जो बंडल गिरा था वह हमारी सरकार के द्वारा दी जाने वाली आर्थिक सहायता को दर्शाता है। ऐसा इसलिए कि आजकल सरकार ज्ञानवश कम और भूलचूक से अधिक आर्थिक सहायता करती है। बजट में विविध क्षेत्रों के लिए आबंटन इसी का उदाहरण है। जो लोग सोचते थे कि फलाँ के लिए अधिक आर्थिक सहायता मिलेगी तो वह किसी और के लिए मिली। बिना माँगे जिसे आर्थिक सहायता मिलती है वह सड़क पर गिरे नोटों के बंडल की याद दिलाती है।

सरकार क्या करती है क्या नहीं करती, यह सब सोचने की फुर्सत किसके पास है। दो जून की रोटी कमाने में यहाँ लोगों की हालत खराब हो जाती है। रोटी, कपड़ा और मकान की समस्या से देश जूझ रहा है। ऐसी स्थिति में आम लोगों की केवल इन आवश्यकताओं की पूर्ति में कमर टूट जाती है।

देश में दूसरा तबका उन लोगों का है, जो कुछ करते तो नहीं बस हाथ पर हाथ धरे देश बदलने की राह देखते हैं। कुछ गलत होने पर देश को भला-बुरा कहने लगते हैं। यदि कुछ करने का अवसर मिलता भी है तो वे उस तीसरे आदमी की तरह होते हैं, जो उनके पास है उसके बारे में नहीं सोचते बल्कि जो नहीं है उसके बारे में सोच-सोचकर सारी दुनिया सिर पर उठा लेते हैं।

35. क्योंकि बोझ नहीं बनना चाहता...

एक सिपाही था। वह अपनी मातृभूमि की सुरक्षा के लिए सीमा पर तैनात था। आए दिन दुश्मन देश से गोलीबारी के कारण माहौल गर्म हो चला था। किंतु इधर कुछ दिनों से माहौल शांत पड़ चुका था। उसने अपने अधिकारी से घर जाने की छुट्टी माँगी। अधिकारी ने स्वीकृति दे दी। घर निकलने से पहले उसने अपनी माँ को फोन कर यह सूचित किया कि वह घर आने वाला है। किंतु उसकी एक शर्त है। माँ ने जब पूछा कि शर्त क्या है तो उत्तर में उसने कहा कि मैं अपने एक मित्र के साथ आने वाला हूँ। वह भी सिपाही है। किंतु उसका दुनिया में कोई नहीं है। माँ ने मंजूरी देते हुए कहा कि वह अपने मित्र के साथ खुशी-खुशी आ सकता है। जितने दिन रहना चाहता है, रह सकता है।

यह सुन सिपाही की खुशी का ठिकाना न रहा। किंतु कुछ पल के लिए वह चुप रह गया। माँ को लगा कि उसका बेटा उससे कुछ छिपा रहा है। माँ के बहुत पूछने पर उसने बताया कि पिछले दिनों गोलीबारी में उसका एक मित्र घायल हो गया था। इस कारण उसका एक पैर काटना पड़ा। वह विकलांग हो चुका है। अब बताओ माँ क्या हम उसे रख सकते हैं? माँ तो पहले आनाकाना करने लगी। लेकिन अपने बेटे का दिल तोड़ना उसके बस की बात नहीं थी। माँ ने लंबी साँस लेते हुए कहा कि अपने साथ तो नहीं पास में कहीं हॉस्टल में रहने की व्यवस्था कर सकते हैं। बेटे को माँ की बात बुरी लगी। उसने माँ को मनाते हुए कहने लगा कि वह अपने मित्र के साथ घर में रहना चाहता है।

इस पर तुरंत माँ से फोन छीनते हुए पिता ने बेटे को समझाने का प्रयास किया। वह कहने लगे कि विकलांगों की देखभाल करना बड़ा

मुश्किल काम है। विकलांग की सेवा करना किसी बोझ से कम नहीं है। इसलिए उसे हम अपने साथ नहीं रख सकते। इसलिए तुम अपना इरादा बदल दो। तुम अकेले आओ। उसकी देखभाल करना हमसे कहाँ होगा। उसे उसके हाल पर छोड़ दे। वह जैसे-तैसे रह लेगा। मेरे प्यारे तुम जल्दी से आ जाओ। हम सभी तुम्हारा कब से इंतजार कर रहे हैं।

पिता का इतना भर कहने की देरी थी कि बेटे ने फोन काट दिया। पिता ने कई बार हैलो-हैलो कहा। लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। कुछ दिन बाद उन्हें उनके बेटे के बारे में एक फोन आया। पता चला कि उनके लड़के ने एक ऊँचे भवन से कूदकर आत्महत्या कर ली। इतना सुनने भर की देरी थी कि माता-पिता तुरंत दौड़े-दौड़े घटनास्थल पहुँचे।

जैसे ही उन्होंने अपने बेटे का शव देखा, उनका कलेजा फट गया। उन्होंने देखा कि बेटा तो एक पैर से विकलांग है। मरने से पहले उसने एक पत्र लिखा था। पत्र इस प्रकार था-

पूज्य पिताजी,

मैं आप पर भार नहीं बनना चाहता। जिस दिन मैंने आपको फोन किया था उसके कुछ महीने पहले मैं घायल हो चुका था। उसी में मैंने अपना पैर गँवा दिया। मैंने डॉक्टरों और अधिकारियों को यह बात आप लोगों को बताने से मना कर दिया था। इसी घटना में मेरा मित्र भी घायल हुआ था। वह भी विकलांग हो चुका था। कितु जब आपने कहा कि विकलांगों की देखभाल करना भार के समान है, तो मैं आप लोगों पर बोझ नहीं बनना चाहता था। इसलिए इस दुनिया को छोड़कर जा रहा हूँ। हो सके तो क्षमा करें।

आपका पुत्र

36. उंगली उठाने से पहले...

मोहन को लगता है कि पिछले कुछ दिनों से उसकी पत्नी ठीक से सुन नहीं पा रही है। वह इसके बारे में अपनी पत्नी से बात करना चाहता है। किंतु उसे यह भय है कि कहीं उसकी पत्नी उस पर बिगड़ न जाए। कहीं लेने के देने न पड़ जाए। वह अपनी पत्नी के बहरेपन को दूर करने के लिए उपाय करने लगता है। उपायों की कड़ी में वह डॉक्टर के पास जाता है। पत्नी की समस्या बताता है।

डॉक्टर मोहन की बात काफी ध्यान से सुनता है। कुछ देर सोचने-समझने के बाद एक उपाय सुझाता है। डॉक्टर उसे सलाह देता है कि तुम अपनी पत्नी से पच्चीस कदम की दूरी से कुछ पूछकर देखो। यदि वह जवाब देती है तो ठीक है नहीं तो बीस कदम की दूरी से पूछो। तब भी कुछ उत्तर न मिले तो इसी प्रक्रिया को पाँच-पाँच कदम कम करते हुए उसके समीप जाकर प्रश्न को दोहराते रहो। फिर भी उत्तर न मिले तो समझ जाना कि वह बहरी है। इसके बाद मेरे पास ले आना मैं इलाज कर दूँगा।

मोहन को डॉक्टर की बात पसंद आयी। वह तुरंत घर गया। पत्नी से पच्चीस कदम की दूरी पर ठहरकर पूछने लगा कि आज खाने में क्या बनाया है? कोई उत्तर न पाकर वह पत्नी के और समीप गया फिर से वही प्रश्न दोहराने लगा। इस बार भी कोई उत्तर नहीं आया। जब वह अपनी पत्नी से पाँच कदम की दूरी पर था तो पत्नी को कुछ बड़बड़ाते हुए देखा। मोहन कुछ और पूछ पाता तभी पत्नी उसके पास आयी और बोली कि जब से घर आये हो एक ही सवाल दोहराए जा रहे हो कि आज खाने में क्या बना

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

है? मैं तब से कह रहूँ कि आज खाने में लिट्टी, चोखा बना है। लेकिन तुम्हें तो कुछ सुनायी ही नहीं देता। कहीं दिमाग खराब तो नहीं हो गया? तबियत तो ठीक है न? जाइए, किसी अच्छे डॉक्टर से अपने बहरेपन का इलाज करवाइए।

अब तो समझ में आ गया होगा कि समस्या किसमें थी। ऐसा कई बार देखा गया है कि समस्या हममें होती है और शिकायत सामने वाले की करते हैं। किसी पर उंगली उठाने से पहले हमें अपने गिरेबान में झाँककर देख लेना चाहिए। फिर चाहे वे सामान्य लोग हों, सरकार या फिर विपक्ष। यह सभी लोगों पर लागू होता है।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

37. एक करोड़ की जीभ!

एक बेरोजगार युवक सुबह-सुबह अपने निर्वाचन क्षेत्र के सांसद के घर जा पहुँचा। जैसे ही वह पहुँचा आव देखा न ताव अपशब्दों की झड़ी लगा दी। द्वाररक्षक उसे भगाने की लाख कोशिश करता रहा। लेकिन युवक था बड़ा ढीठ। वह टस से मस न हुआ। सांसद जी को बाहर कुछ शोरगुल सा लगा। ध्यान से सुनने पर पता चला कि कोई उन्हें मनमाने ढंग से गरिया रहा है। वे कारण पता लगाने तथा समस्या समाधान करने के लिए युवक के पास पहुँचे।

सांसद जी बड़े संयमी थे। सो, युवक को डाँटने-फटकारने अथवा लताड़ने की जगह उसे बड़े प्रेम से बैठने के लिए कहा। बड़ी विनम्रता से पूछा "क्या बात है भाई! ऐसी क्या मुसीबत आ पड़ी जो तुम मुझे इतनी सुबह-सुबह डाँट रहे हो?" इस पर युवक ने कहा, "आपने झूठे-झूठे वायदे कर चुनाव तो जीत लिया और हम जैसे लोगों को भूल गए। खुद तो चैन की नींद सोते हो और हमें दर-दर की ठोकर खाने के लिए छोड़ दिया है। महँगाई के मारे न खाए बनता है न पीए। बेरोजगारी से हमारे जैसे लोगों की हालत खस्ता है। जेब में एक फूटी-कौड़ी भी नहीं है। अब आप ही बताइए ऐसे में आदमी गरियायेगा नहीं तो उसकी आरती उतारेगा?"

सांसद जी को सारा मामला समझ में आ गया। वे कुछ समझाते इससे पहले ही युवक भड़क उठा और बोला, "आपको क्या है? आपको तो सरकार की ओर से बत्तीवाली चार चक्का गाड़ी, बड़ा बंगला, नौकर-चाकर, खाने-पीने में पाँच सितारा होटल सा भोजन, आए दिन हवाई सफर करने का मौका, बीमार पड़ने पर एक से बढ़कर एक अस्पताल। और बदले

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

में हम जैसे लोगों को क्या मिलता है – ठेंगा!" सांसद जी को लगा कि युवक तो बड़ा जागरूक है। इसे यों ही बेवकूफ नहीं बनाया जा सकता। वे कुछ जुगाड़ करने लगे। थोड़ी देर सोचने-समझने के बाद उन्होंने मुस्कुराते हुए उससे कहा, "तो तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है। एक फूटी-कौड़ी भी नहीं?" "हाँ" युवक ने मुँह फुलाते हुए उत्तर दिया। "ठीक है तो मैं तुम्हें एक लाख रुपये देने के लिए तैयार हूँ, लेकिन शर्त यह है कि तुम्हें मुझे अपना एक हाथ काटकर देना होगा।" "अरे भाई यदि मैं आपको अपना हाथ दे दूँगा, तो अपने काम कैसे करूँगा?" "ठीक है तो अपना एक पैर ही दे दो। इसके बदले में मैं तुम्हें दस लाख रुपये दूँगा। सोच लो। सौदा फायदे का है।" "क्या कमाल की बात करते हैं आप! यदि मैं अपना पैर दे दूँगा तो इधर-उधर चलूँगा कैसे? कुछ सोच-समझकर बात कीजिए।" "बड़े अजीब आदमी हो। कुछ भी माँगता हूँ तो न-नुकूर करते हो। चलो ठीक है, एक काम करो तुम अपनी जीभ ही काटकर दे दो इसके एवज में मैं तुम्हें एक करोड़ रुपये दूँगा। तुम्हारी गरीबी हमेशा-हमेशा के लिए दूर हो जाएगी। सोच लो ऐसा मौका बार-बार नहीं मिलेगा।" युवक का गुस्सा सातवें आसमान पर था। वह झल्लाकर बोला, "लगता है जब से आप सासंद बने हैं तब से आपका दिमाग सिर में कम घुटने में ज्यादा रहता है। दिमाग-विमाग खराब तो नहीं हो गया। कैसी बे-फिजूल की बातें कर रहे हैं। मैं यदि अपनी जीभ दे दूँगा तो जीवन भर बात कैसे करूँगा। अपनी जरूरतों के लिए सामने वाले से पूछूँगा कैसे?"

सांसद जी अब बड़े इत्मनान में थे। युवक की बातें सुन उन्हें लगा कि अब आया ऊँट पहाड़ के नीचे। उन्होंने एक लंबी साँस ली और कहा, "भाई! जब तुम्हारे पास एक लाख रुपये से अधिक कीमती हाथ है, दस लाख रुपये से अधिक कीमती पैर है और एक करोड़ रुपये से भी अधिक कीमती जीभ है तो तुम कैसे कह सकते हो कि तुम्हारे पास फूटी-कौड़ी भी

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

नहीं है। मैंने चुनाव जीतने के लिए बहुत से पापड़ बेले हैं। मैं यूँ हीं सांसद नहीं बना। इसी को मेहनत कहते हैं। यदि मैं भी तुम्हारी तरह सुबह-सुबह डाँटने-फटकारने या लताड़ने का काम करता तो आज सांसद नहीं तुम्हारी तरह दर-दर की ठोकरें खाते फिरता। जाओ, मेहनत करो और मेरा-तुम्हारा समय बर्बाद मत करो।"

पाप बेचारा युवक! वह इतना सा मुँह लेकर वहाँ से चला गया।

38. लालच का दंश

गाँव के दक्षिण में एक छोटी-सी नदी बहती थी, और उसी के किनारे था बुंदेलों का गाँव—नागपुर। गाँव समृद्ध नहीं था, पर लोगों का मन स्नेह से भरा था। घर-आँगन छोटे थे, मगर दिल बड़े थे। परंतु इस गाँव में एक ऐसा व्यक्ति भी था, जिसके मन में लालच का अंधकार भरा था—रामलाल।

रामलाल गाँव का सबसे धनी व्यक्ति था। पुश्तैनी ज़मीनें, बैल, गाएँ और कई दुकानें थीं उसके पास। लेकिन जितना धन बढ़ता, उतनी ही उसकी इच्छाएँ भी बढ़ती गईं। दूसरों को गरीब बनाकर स्वयं को और धनी बनाने की भूख उसके भीतर घर कर गई थी। वह सूद पर रुपये चढ़ाता, बदले में गरीबों की ज़मीनें हथिया लेता।

रामलाल की बूढ़ी माँ, जमुना देवी, उसे हमेशा समझाती—"बेटा, धन केवल सेवा के लिए होता है, संग्रह करने के लिए नहीं। यदि गरीब की हाय लग गई, तो कोई मोल नहीं रहेगा तेरे रुपयों का।" लेकिन रामलाल के कानों पर जूँ तक न रेंगती।

एक बार गाँव के गरीब किसान गंगाराम ने उससे कर्ज़ लिया। सूखा पड़ा, फसल बर्बाद हुई, और कर्ज़ चुकाने की स्थिति नहीं रही। रामलाल ने उसके घर की एकमात्र ज़मीन भी हड़प ली। गंगाराम का परिवार भूखों मरने लगा। उसकी पत्नी बीमारी से मर गई, और बेटा शहर की ओर भाग गया। गंगाराम गाँव के बाहर पीपल के नीचे पड़ा रहता, भूख से

बिलखता। एक दिन उसी पेड़ के नीचे उसकी लाश मिली। गाँव के लोग कहते, "रामलाल की वजह से एक घर उजड़ गया।"

लेकिन रामलाल के मन में कोई पश्चाताप नहीं था। वह और अधिक धन बटोरने में लग गया। कई और किसानों की ज़मीनें उसके कब्ज़े में आ गईं। उसका वैभव बढ़ता गया, मगर भीतर का इंसान मरता गया।

रामलाल का बेटा मोहन शहर में पढ़ रहा था। जब वह छुट्टियों में गाँव आया, तो अपने पिता का यह निर्दय रूप देखकर व्यथित हो उठा। उसने कहा, "बाबूजी, जिनके घर आप उजाड़ रहे हैं, उनकी बद्दुआओं से कैसे बचेंगे?"

रामलाल हँसते हुए बोला, "बेटा, पैसा सबसे बड़ी शक्ति है। यह हमें सबकुछ दिला सकता है। गरीबों की बद्दुआएँ कुछ नहीं कर सकतीं।"

मोहन दुखी मन से चुप रह गया। परंतु समय की गति अपरिवर्तनीय होती है।

कुछ ही वर्षों में रामलाल की वृद्ध माँ बीमार पड़ गईं। डॉक्टर ने कहा कि उन्हें भरपूर आराम और देखभाल की जरूरत है, मगर रामलाल के पास इतना समय कहाँ था! उसने अपनी माँ की देखभाल के लिए एक नौकर रख दिया और स्वयं व्यापार में व्यस्त हो गया।

माँ की हालत बिगड़ती गई। एक रात जब उन्होंने अंतिम साँसें लीं, तब भी रामलाल उनके पास नहीं था। गाँववालों ने मिलकर उनका अंतिम संस्कार किया।

इसके कुछ ही समय बाद, मोहन ने एक साधारण परिवार की लड़की से विवाह कर लिया। लेकिन रामलाल को यह रिश्ता मंजूर नहीं था। उसने बेटे को घर से निकाल दिया और कहा, "धनहीन लोग हमारे परिवार का हिस्सा नहीं बन सकते।"

मोहन ने आँखों में आँसू लिए पिता को प्रणाम किया और घर छोड़ दिया। अब रामलाल के पास अपार धन था, मगर अपने कहने को कोई न था।

समय बीतता गया। रामलाल का व्यापार और बढ़ा, लेकिन अब उसका शरीर साथ नहीं देता था। बढ़ती उम्र में उसकी देखभाल करने वाला कोई नहीं था। नौकरों ने भी उसे छोड़ दिया।

फिर एक दिन, जब वह अकेला अपने बड़े महलनुमा घर में बैठा था, तब उसे बहुत तेज़ दर्द उठा। उसने मदद के लिए पुकारा, मगर सुनने वाला कोई नहीं था। वह फर्श पर गिर पड़ा।

गाँववालों को यह खबर मिली, तो वे दौड़े आए। परंतु जब तक दरवाज़ा तोड़ा गया, तब तक रामलाल दुनिया को अलविदा कह चुका था।

गाँव के बुज़ुर्ग ने सिर हिलाते हुए कहा, "देखा, लालच ने इसे कहाँ पहुँचा दिया? अपार धन होते हुए भी यह इंसान अकेले, तड़प-तड़प कर मरा।"

धन का लोभ अंततः विनाश की ओर ले जाता है। यदि धन का उपयोग दूसरों की भलाई के लिए किया जाए, तो वह सौभाग्य लाता है, अन्यथा वह अभिशाप बन जाता है। लालच के अंधकार में जीने वाला

व्यक्ति अंततः अकेलेपन और पीड़ा का शिकार बनता है। यही इस कहानी की सबसे बड़ी सीख है।

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

39. करिये ी ि ोख ि सौदा

रामरतन बाबू बड़े ध्यान से टी.वी. पर समाचार देख रहे थे। समाचार में ऐसा कौनसा अलाउद्दीन का खजाना मिल गया कि वे तुरंत अपनी धर्मपत्नी को जोर-जोर से आवाज देने लगे। उनकी पत्नी दौड़ी-दौड़ी आयी और उनके उतावलेपन का कारण पूछा। तो उन्होंने बताया कि अब हमारे घर में जल्द बच्चे की किलकारी सुनने को मिलेगी। अब मैं दादा और तुम दादी कहलाओगी। पत्नी अपने पति की बात को किसी अनबुझ पहेली की तरह सुन रही थी। मुँह पर प्रश्नवाचक चिह्न साफ झलक रहा था। रामरतन बाबू अपनी पत्नी को अच्छी तरह से जानते थे। सो, उन्होंने समझाते हुए कहा, "अरे भाग्यवान! भारत सरकार ने एक बड़ा फैसला लिया है। इसके अनुसार अब न केवल रिश्तेदारों बल्कि अन्यों को सेरोगेसी (किराये की कोख) माँ बनने का पूरा अधिकार है। अब तक हमने रिश्तेदारों से कई बार पूछा। सभी ने न-नुकूर ही किया। दुनिया में कई औरतें ऐसी हैं जिन्हें रुपयों की बहुत जरूरत है। कोई-न-कोई तो हमारे बेटे और बहू की झोली में संतान दे ही देगी।"

दूसरी ओर रामरतन के बेटे और बहू में आए दिन किसी-न-किसी बात पर झगड़े होते ही रहते थे। बेटा समाज की तूती बोलता और बहू को बाँझ कहकर संतानहीनता का सारा दोष उसी पर मढ़ देता। बहू भी कम न थी। वह भी अपने पति को सीधे-सीधे न सही परोक्ष रूप से ही नामर्द कहने का कोई भी अवसर नहीं छोड़ती थी। वो तो रामरतन थे, जो दोनों को एक छत के नीचे जैसे-तैसे मिलजुलकर रहने के लिए सारे जुगाड़ लगाते रहते थे। उन्हें पता था कि यह सब किच-किच संतानहीनता के कारण हैं। उन्हें

पूरा विश्वास था कि एक बार घर में संतान आ जाए सारा मामला रफा-दफा हो जाएगा। लाख हाथ-पैर मारने के बाद वर्षा नाम की एक विधवा मिली, जो किराये की कोख के लिए तैयार हो गई।

रामरतन ने बेटे और बहू को समझाया और वर्षा के साथ डॉक्टर के पास पहुँचे। वहाँ डॉक्टर ने वर्षा की डॉक्टरी परीक्षा की। वह सेरोगेसी संतान को जन्म देने के लिए पूर्ण रूप से चुस्त-दुरुस्त थी। डॉक्टर को गवाह बनाकर पूरे पाँच लाख रुपये में सौदा तय हुआ। अग्रिम राशि के रूप में एक लाख और गर्भ धारण करने के नौ महीने बाद जन्म लेने वाली संतान को बेटे-बहू के हाथों में सौंपने पर शेष चार लाख। वर्षा पाँच लाख रुपये की राशि से बड़ी खुश थी। दो साल पहले उसके पति की सड़क दुर्घटना में मौत हो गई थी। वह घर का राशन-पानी, बच्चों की स्कूल फीस, कपड़ा-लत्ता, घर का किराया और छोटी-छोटी जरूरतों के लिए आए दिन ताने सुनती थी। यदि वह नौ महीने के बाद रामरतन के परिवार को सकुशल संतान दे देती है, तो उसकी गरीबी कुछ हद तक दूर हो सकेगी। इसलिए वह डॉक्टर की निगरानी में अपने गर्भ में पल रहे रामरतन के वंशज का बड़ा ख्याल रखने लगी।

करीब पाँच महीने के बाद एक अजीब घटना घटी। बेटे और बहू ने बारी-बारी वर्षा को फोन किया। उसे धमकाया कि वह गर्भ में पल रहे उनके बच्चे को गिरा दे। वर्षा को कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। वह करे तो क्या करे? कुछ दिनों के बाद वह रामरतन से मिली। उन्हें एक कवर थमाया और वहाँ से चली गई। जब रामरतन ने कवर खोला तो देखा कि उसमें एक लाख रुपये थे और साथ में एक चिट्ठी। काँपते हाथों से उन्होंने चिट्ठी को पढ़ना आरंभ किया। चिट्ठी में लिखा था, "पिता समान रामरतन

जी, प्रणाम! मैं आपसे कुछ कहना चाहती हूँ। कोई किराए पर मकान भी लेता है तो उसका बड़ा ख्याल रखता है। दीवार पर एक कील ठोकने से पहले लाख बार सोचता है कि कहीं मकान का मालिक बिगड़ न जाए या फिर दीवार फूहड़ न हो जाए। मैं तो फिर भी जीती-जागती औरत हूँ। आपके बेटे और बहू ने आव देखा न ताव झट से बच्चा गिराने के लिए कह दिया। हाँ यह बात सही है कि मैं यह बच्चा रुपयों-पैसों के लिए कोख में पाल रही हूँ। लेकिन इसका मतलब कतई नहीं कि मैं इतनी बेरहम हो जाऊँ कि एक जीते-जागते बच्चे को मार दूँ। मैं गरीब जरूर हूँ। हैवान नहीं। हाँ सच है कि मैं दो जून की रोटी का जुगाड़ करने के लिए दर-दर की ठोकर खाती हूँ। लेकिन इतनी भी कमजोर नहीं कि पैसों के लालच में अजन्मे शिशु की हत्यारिन बन बैठूँ। मैं माँ हूँ। कसाई नहीं। आपने मात्र मेरे कोख को किराए पर लिया है, न कि मेरी ममता, प्रेम और पीड़ा को। सरकारें आए दिन सरोगेसी के नाम पर शरीरों का सौदा करने से नहीं हिचकतीं। उनके लिए शरीर किसी बक्से या कमरे से कम नहीं है। मैं सरकार तो क्या दुनिया की सारी शक्तियों को खुली चुनौती देती हूँ कि वे किसी माँ की ममता को नहीं झुका सकतीं। फूल और खुश्बू अटूट हैं।

रामरतन के हाथों में पत्र थरथरा रहा था, और उसकी आँखें नम थीं। हर शब्द जैसे सीधा उसके दिल में उतर रहा था। "इसका मतलब यह नहीं कि फूल खरीदने के साथ ही खुश्बू पर आपका अधिकार हो गया," यह वाक्य ही उसके मन में हलचल मचाने के लिए पर्याप्त था। उसने जीवन में कई बार चीजें खरीदी थीं, सौदे किए थे, लेकिन आज उसे एहसास हुआ कि कुछ चीज़ें खरीदी नहीं जा सकतीं। खुशबू की तरह ममता भी सर्वव्यापी है, जो न किसी कीमत की मोहताज होती है, न ही किसी अनुबंध की। पत्र में आगे लिखा था कि कोख को तो खरीदा जा सकता है, लेकिन उसकी

ममता को कतई नहीं। यह बात उसके दिल को झकझोरने वाली थी। उसने कभी सोचा ही नहीं था कि मातृत्व भी कोई सौदेबाजी की चीज़ नहीं हो सकती। वह समझ चुका था कि कोख सिर्फ एक साधन हो सकती है, लेकिन माँ बनने की अनुभूति और उस बच्चे के लिए उमड़ने वाला स्नेह किसी कीमत पर नहीं खरीदा जा सकता। लेकिन यह पत्र केवल किसी सिद्धांत की चर्चा भर नहीं था, बल्कि यह उसकी जिंदगी की सबसे कठोर सच्चाई से उसे परिचित कराने आया था। पत्र लिखने वाली महिला ने आगे लिखा था कि वह यह पत्र इसलिए लिख रही है क्योंकि रामरतन जैसा भी इंसान हो, लेकिन वह अपने बेटे और बहू की तरह बेरहम तो हरगिज नहीं हो सकता। इन शब्दों ने रामरतन को भीतर तक हिला दिया। क्या सचमुच उसका बेटा और बहू इतने निर्दयी हो सकते हैं? क्या वे इंसान कहलाने योग्य भी नहीं रहे? यह सोचकर उसका कलेजा कांप उठा। उसने जीवन भर उन्हें अच्छे संस्कार दिए, उन्हें अच्छे स्कूल-कॉलेज में पढ़ाया, उनके हर सपने को पूरा किया, लेकिन आज उसे एहसास हो रहा था कि शायद वह कुछ मूलभूत बातें सिखाने में असफल रहा। पत्र में आगे लिखा था कि वह महिला नहीं जानती कि रामरतन के बेटे और बहू के आपसी संबंध कैसे हैं, लेकिन इतना निश्चित रूप से कह सकती है कि वे इंसान कहलाने योग्य नहीं हैं। यह शब्द उसकी आत्मा को भेद गए। उसने अपनी पूरी जिंदगी यही समझा था कि इंसान वही होता है जो दूसरों के दुख-दर्द को समझे, लेकिन आज उसकी ही संतानें इस कसौटी पर खरी नहीं उतर रही थीं। पत्र आगे कहता है कि इंसान मारने की बात तो छोड़िए, उसके बारे में सोच भी नहीं सकता। यह वाक्य पढ़कर रामरतन के हाथ काँपने लगे। उसकी सांसें भारी हो गई। क्या सच में उसके बेटे और बहू ने ऐसा कुछ किया था? क्या उन्होंने किसी निर्दोष की हत्या की साजिश रची थी? उसकी आँखों के आगे अंधेरा सा छाने लगा। वह पत्र में लिखे एक-एक शब्द को समझने की कोशिश

कर रहा था। उसने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि उसकी ही संतानें इतनी क्रूर हो सकती हैं। लेकिन अब सच्चाई उसके सामने थी, और वह इससे मुँह नहीं मोड़ सकता था। पत्र का अंतिम वाक्य पढ़ते ही रामरतन का दिल जैसे चकनाचूर हो गया—"इसलिए मैं आपकी रकम आपको लौटा रही हूँ और सौदा तोड़ रही हूँ।" यह शब्द जैसे उसके कानों में गूंजने लगे। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। क्या उसने वाकई एक सौदा किया था? क्या उसने किसी कोख को पैसे देकर खरीदा था? लेकिन अगर यह सिर्फ एक सौदा था, तो यह महिला इतना भावुक क्यों हो रही थी? उसे समझ आ गया कि यह सिर्फ एक व्यावसायिक लेन-देन नहीं था, यह एक रिश्ते की हत्या थी, एक विश्वासघात था, एक माँ की ममता को ठेस पहुँचाने की कोशिश थी। वह खुद को धिक्कारने लगा कि उसने कैसे सोच लिया कि पैसे देकर किसी कोख को खरीद सकता है। उसका दिल अब गिल्ट और पछतावे से भर चुका था। वह कुर्सी पर बैठ गया, पत्र अब भी उसकी कांपती उंगलियों में था। वह इसे फिर से पढ़ने लगा, हर शब्द जैसे उसके अंतर्मन में चुभ रहा था। पत्र के अंतिम शब्दों के साथ ही वह फूट-फूटकर रोने लगा। उसकी आत्मा पर जो बोझ था, वह अब उसके आँसुओं के साथ बाहर आने लगा था। वह समझ चुका था कि उसने अब तक कितना बड़ा अपराध कर डाला था।

40. जिसकी जैसी सोच

एक घने जंगल के बीचों-बीच एक विशाल वृक्ष खड़ा था। उसकी हरी-भरी शाखाओं पर अनेक पक्षी बसेरा करते थे। उन्हीं में से एक जोड़ा था – कबूतर और कबूतरी। दोनों का जीवन सुखमय था, वे दिनभर चहचहाते, उड़ते-फिरते और संध्या होते ही उसी वृक्ष पर लौट आते। वे एक-दूसरे के प्रति गहरा स्नेह रखते थे और हर विपत्ति में एक-दूसरे का साथ निभाने का वचन दे चुके थे।

एक दिन, संध्या के समय, जब सूरज धीरे-धीरे क्षितिज में विलीन हो रहा था, दोनों पक्षी वृक्ष की डाली पर बैठे थे। अचानक, उन्हें दूर से एक मनुष्य आता दिखाई दिया। उसकी चाल धीमी थी, पर निगाहें पैनी और संदेहास्पद। कबूतरी को अनजाने भय ने घेर लिया। उसने अपने साथी से कहा, "चलो जल्दी उड़ चलें, यह मनुष्य हमारी ओर बढ़ रहा है। हो सकता है कि यह शिकारी हो और हमें हानि पहुँचाए।"

कबूतर ने गहरी सांस ली और आत्मविश्वास भरे स्वर में उत्तर दिया, "तुम व्यर्थ डर रही हो। देखो तो सही, इसका लिबास कितना शालीन है, इसकी चाल में कितनी गरिमा है। यह कोई साधारण मनुष्य नहीं, बल्कि सभ्य और भला व्यक्ति प्रतीत होता है। भला यह हमें क्या नुकसान पहुँचाएगा? यह तो सज्जन पुरुष लगता है।"

कबूतरी अपने साथी की बात सुनकर चुप हो गई, लेकिन उसका मन पूरी तरह आश्वस्त नहीं हो पाया। उसका अंतर्मन अब भी किसी अनिष्ट

प्रांजल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2020 -ISBN No. 978-81-19620-81-4

की आशंका से घिरा था, लेकिन वह कबूतर के निर्णय के आगे मौन रह गई। शिकारी धीरे-धीरे उनके निकट आ रहा था। उसके चेहरे पर एक ठंडी मुस्कान थी, और उसकी आँखों में एक अजीब-सी चमक।

जब वह मनुष्य उनके पास पहुँचा, तो उसने एक क्षण की भी देर न की। अपने वस्त्र के भीतर से एक तीर-कमान निकाला और झट से निशाना साधकर कबूतर पर तीर छोड़ दिया। तीर इतनी तीव्र गति से आया कि कबूतर के पास बचने का कोई अवसर ही न था। एक क्षण पहले जो प्राणी अपने जीवनसाथी को आश्वासन दे रहा था, अब धरती पर निर्जीव पड़ा था।

कबूतरी भय और दुःख से काँप उठी। वह सहसा समझ नहीं पाई कि यह क्या हो गया। जिस साथी के साथ उसने जीवन के हर क्षण की कल्पना की थी, वह अब इस संसार में नहीं था। शिकारी ने एक छलावे के सहारे धोखा देकर उसकी दुनिया उजाड़ दी थी। वह किसी तरह अपने प्राण बचाकर उड़ गई और एक सुदूर स्थान पर जा बैठी।

वहाँ जाकर वह फूट-फूटकर रोने लगी। उसका हृदय विदीर्ण हो गया। वह सोचने लगी कि उसके प्रिय ने कितना बड़ा भ्रम पाल लिया था। केवल बाहरी आडंबर देखकर उसने यह मान लिया कि सामने वाला सज्जन है, और इसी विश्वास ने उसका सर्वस्व छीन लिया।

समय बीतता गया, लेकिन कबूतरी का दुःख कम नहीं हुआ। वह अपने प्रिय की स्मृति में निरंतर विलाप करती रही। अंततः उसने निश्चय किया कि वह न्याय की गुहार लगाएगी। उसे याद आया कि इस वनप्रदेश के राजा न्यायप्रिय और दयालु हैं। वह उड़कर उनके राजमहल पहुँची और राजा के दरबार में अपनी फरियाद रखी।

राजा अत्यंत न्यायप्रिय और प्रजा की पीड़ा को समझने वाले शासक थे। उन्होंने कबूतरी की व्यथा को ध्यानपूर्वक सुना और उसके दुःख को महसूस किया। उसकी करुण कथा सुनकर दरबार में उपस्थित सभी लोग भावविह्वल हो उठे। राजा ने तुरंत अपने सैनिकों को आदेश दिया कि उस निर्दयी शिकारी को बंदी बनाकर दरबार में उपस्थित किया जाए।

राजा का आदेश पाते ही सैनिकों ने पूरे राज्य में शिकारी की खोज शुरू कर दी। वह कहीं दूर भागने की फिराक में था, लेकिन राजा के सैनिकों की पैनी निगाहों से बच नहीं सका। कुछ ही समय में शिकारी को बंदी बनाकर दरबार में प्रस्तुत किया गया। शिकारी को जैसे ही दरबार में लाया गया, वह भयभीत हो गया। उसने दरबार के वैभव और राजा के तेज को देखकर अपने अपराध को छुपाने की कोई चेष्टा नहीं की। उसने अपने अपराध को स्वीकार कर लिया।

राजा ने गंभीर स्वर में कहा, "तुमने एक निर्दोष प्राणी का जीवन छीन लिया है, यह अत्यंत घृणित कार्य है। लेकिन इसकी सज़ा वही देगा जिसे तुमने सबसे अधिक पीड़ा दी है।" यह कहकर राजा ने कबूतरी की ओर देखा और आदेश दिया कि वह स्वयं इस अपराधी के लिए उचित दंड का निर्णय करे।

कबूतरी की आँखों में आँसू थे, लेकिन अब उसमें दुःख के स्थान पर दृढ़ता थी। उसने धीरे से कहा, "हे राजन, मेरा प्रिय अब कभी लौटकर नहीं आएगा। उसका जीवन मुझसे छलपूर्वक छीन लिया गया है, लेकिन मैं चाहती हूँ कि यह शिकारी अपने जीवनभर इस छल के प्रतीक के रूप में पहचाना जाए। इसकी सबसे बड़ी सज़ा यही होगी कि यह अब कभी सभ्य

मनुष्य का वेश न धारण कर सके। इसे सदैव शिकारी के वस्त्र में ही रहना चाहिए ताकि लोग इसे दूर से ही पहचान लें और इसके छलावे में न आएं।"

राजा ने कबूतरी के निर्णय को सुनकर उसकी बुद्धिमानी और विवेकशीलता की सराहना की। उन्होंने तत्काल आदेश दिया कि शिकारी को अब से शिकारी का ही लिबास पहनना होगा। वह कभी भी साधु या सज्जन पुरुष के वस्त्र नहीं पहन सकेगा, ताकि भविष्य में वह किसी को अपने भले लिबास के माध्यम से छल न सके।

इस न्यायिक निर्णय से पूरा दरबार संतुष्ट हुआ। राजा के न्याय की दूर-दूर तक प्रशंसा हुई और कबूतरी के धैर्य और समझदारी की चर्चा होने लगी। यह घटना एक सीख बन गई कि केवल बाहरी स्वरूप को देखकर किसी के चरित्र का निर्णय नहीं करना चाहिए। असली सज्जनता मनुष्य के कर्मों से परखी जाती है, न कि उसकी पोशाक से।



डॉ. सुरेश कुमार मिश्रा 'उरतृप्त' हिंदी साहित्य जगत के प्रसिद्ध व्यंग्यकार, बाल साहित्य लेखक और कवि हैं। उनकी लेखनी में सामाजिक यथार्थ का गहरा बोध, मानवीय संवेदनाओं की सजीव अभिव्यक्ति और व्यंग्य की तीक्ष्ण धार देखने को मिलती है। उन्होंने तेलंगाना सरकार के लिए प्राथमिक स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालय स्तर पर कुल 55 पुस्तकों के लेखन, संपादन और समन्वय में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनके ऑनलाइन संपादन में आचार्य रामचंद्र शुक्ल के कार्यों के डिजिटल संस्करणों का संपादन भी शामिल है।

डॉ. मिश्रा के व्यंग्य लेखों ने व्यापक लोकप्रियता प्राप्त की है। *शिक्षक की मौत* पर उनके व्यंग्य को साहित्य आजतक चैनल पर आठ लाख से अधिक लोगों ने पढ़ा, देखा और सुना, जिससे उन्होंने व्यंग्यकार के रूप में एक विशिष्ट पहचान बनाई। उनके व्यंग्य संग्रह *एक तिनका इक्यावन आँखें*, *म्यान एक तलवार अनेक*, *गपोड़ी अड्डा* और *सब रंग में मेरे रंग* समाज की विसंगतियों पर करारा प्रहार करते हैं। वहीं, उनके कहानी संग्रह *बूँद-बूँद समुंदर*, *धूप-छाँव के रिश्ते*, *अनदेखे मोड़* और *यादों की पगडंडी* मानवीय संवेदनाओं की गहराई को छूते हैं।

उनकी उत्कृष्ट साहित्यिक साधना के लिए उन्हें *तेलंगाना हिंदी अकादमी द्वारा श्रेष्ठ नवयुवा रचनाकार सम्मान, 2021* (तेलंगाना के मुख्यमंत्री के. चंद्रशेखर राव के करकमलों से), *व्यंग्य यात्रा रवींद्रनाथ त्यागी सोपान सम्मान* (आदरणीय सूर्यबाला जी, प्रेम जनमेजय जी, प्रताप सहगल जी, कमल किशोर गोयनका जी के करकमलों से), *साहित्य सृजन सम्मान*, *प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के करकमलों से सम्मान* सहित कई प्रतिष्ठित पुरस्कार प्राप्त हुए हैं।

डॉ. मिश्रा की लेखनी समाज को आईना दिखाने के साथ-साथ पाठकों को नए दृष्टिकोण प्रदान करती है, जिससे वे अपने आसपास की दुनिया को अधिक सूक्ष्मता और गहराई से देखने में सक्षम होते हैं।

9 788119 620814